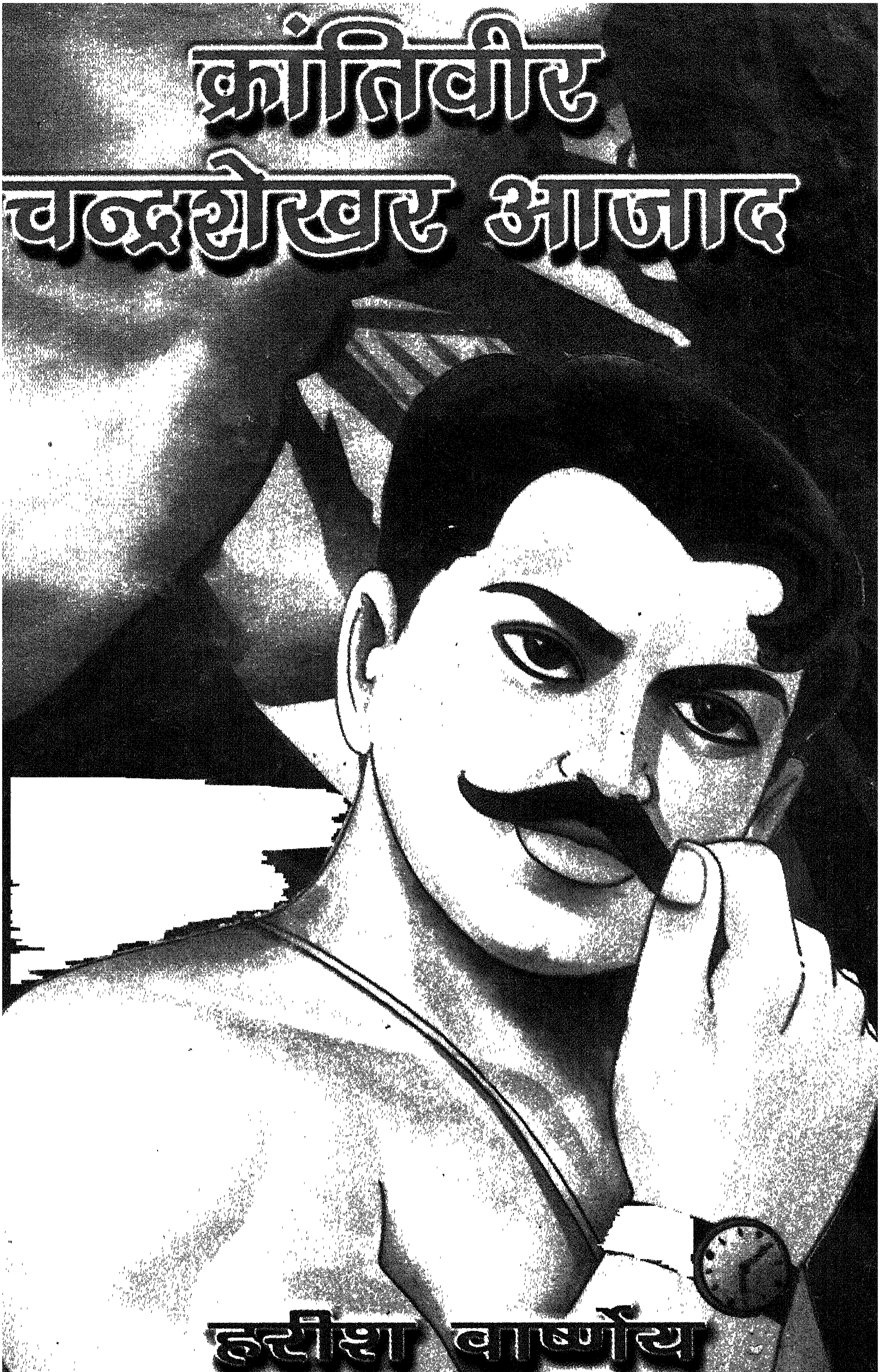
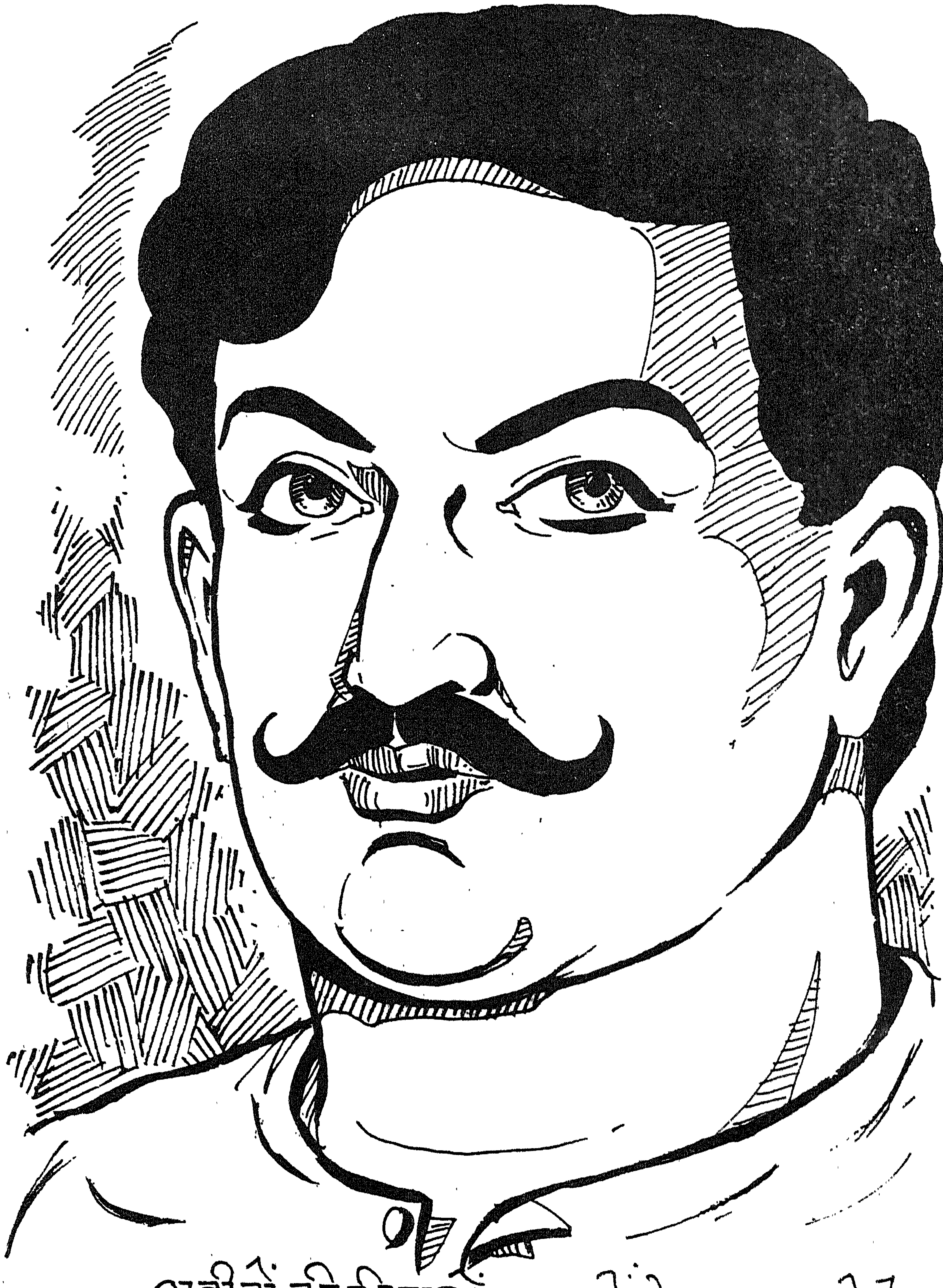
क्रांतिवीर चन्द्रशेखर आजाद



हरीश वार्ष्णेय

क्रांतिवीर
चन्द्रशेखर आज़ाद



.... शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।।

क्रांतिवीर चन्द्रशेखर आज़ाद

लेखक
हरीश वार्ष्णेय
चित्रांकन
विवेक कौशिक

प्रकाशक
शब्द सागर
430, प्रथम तल, महाराम मौहल्ला
शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रकाशक : शब्द सागर
430, प्रथम तल, महाराम मौहल्ला
शाहदरा, दिल्ली-110032

मूल्य : 150.00 रुपये

संस्करण : सन् 2002

आवरण : एस॰ के॰ ग्राफिक्स, दिल्ली-110032

शब्द-संयोजन : एस॰ के॰ कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032

मुद्रक : ईशान प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

अनुक्रमणिका

बालक चन्द्रशेखर

अंग्रेज़ी शासनकाल के समय मध्य भारत में एक रियासत अलीराजपुर थी। सन् 1906 की बात है, इसी अलीराजपुर में एक भंवरा नामक गांव में पण्डित सीताराम तिवारी एक छोटे-से घर में रहा करते थे। उनकी पत्नी जगरानीदेवी हाथों में नवजात शिशु संभाले ज़च्चागृह से बाहर आईं। बच्चा बहुत दुबला-पतला दीख पड़ता था। इससे पूर्व उनके तीन पुत्र जन्म लेने के थोड़े ही दिन बाद एक-एक कर मां की गोद सूनी कर गए।

बालक कमज़ोर होते हुए भी सुन्दर दिखता था। चन्द्रमा के समान गोल मुख वाला होने के कारण बालक का नाम चन्द्रशेखर रखा गया। गांव की सभी स्त्रियां बार-बार सीताराम की पत्नी जगरानीदेवी से कहा करतीं, "अपने लाडले को छुपाकर ही रखना, कहीं किसी की नज़र न लग जाए।"

बच्चे को कुदृष्टि से बचाने के लिए साधारण माता के समान जगरानीदेवी भी बच्चे के माथे पर एक काला टीका लगा देती थी। टीका काले रंग का होते हुए भी बच्चे के मुख पर एक विशेष चमक बिखेर देता। इससे बालक और भी सुन्दर दिखने लगता।

वास्तव में यह सच है कि ईमानदार व्यक्ति संसार में अधिकतर निर्धन ही होते हैं। जो प्रायः बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना करते रहते हैं। गरीबी में आदमी को अपना स्वाभिमान बनाए रखना काफी कठिन होता है। ईमानदार और स्वाभिमानी मनुष्य की असली पहचान भी तो गरीबी की परिस्थितियों में होती है। गरीबी को एक कसौटी माना जा सकता है, जो कि व्यक्ति को परखती है। जो सच्चे स्वाभिमानी होते हैं तथा जिनका आत्मबल काफी दृढ़ हो, छोटी-बड़ी कठिनाइयां उनका



बाल भी बांका नहीं कर पातीं। पण्डित सीताराम तिवारी भी ऐसे ही स्वाभिमानी व्यक्ति थे। भूखे रहते हुए भी वे कभी किसी के आगे गिड़गिड़ाए नहीं। कभी-कभी तो बालक चन्द्रशेखर के लिए दूध का प्रबन्ध कर पाना भी कठिन हो जाता था, लेकिन ऐसे में भी उन्होंने बच्चे को बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा।

हमारे देश में यह विश्वास किया जाता था कि अगर बच्चे को हम का सिंह मांस खिलाएं तो वह बड़ा होकर सिंह की तरह ही बलवान होता है। इसी धारणा के अनुसार चन्द्रशेखर को भी बचपन में सिंह का मांस खिलाया गया।

समय धीरे-धीरे गुजरता रहा। चन्द्रशेखर की उम्र आठ-नौ साल की हो गई। इस विश्वास से, सिंह का मांस खाने से बच्चे बड़े होने पर वीर बनते हैं या नहीं, परन्तु चन्द्रशेखर बचपन से ही अपनी वीरता का परिचय देने लगे थे।

दीपावली की रात को हर तरफ रोशनी जगमगा रही थी। सभी बड़े बच्चे फुलझड़ियां आदि जला रहे थे, छोटे बच्चे इन्हें देखकर खुश हो रहे थे।

चन्द्रशेखर भी इन बच्चों में एक थे। उन्होंने छोटे बच्चों को खुश करने के लिए एक साथ दस-ग्यारह रंगीन तीलियां जलाईं। सभी बच्चे खूब देर तक देखते रहे, इससे खूब उजाला-सा हुआ, यह सब देखकर बच्चे खुशी से तालियां बजाने लगे, तभी किसी की दृष्टि चन्द्रशेखर के हाथ पर पड़ी। उनकी हथेली बुरी तरह जल गई थी। बच्चों ने घबराकर शोर मचाना शुरू कर दिया, "अरे! तुम्हारा हाथ तो जल गया।"

कई लड़कों ने जाकर चन्द्रशेखर को पकड़ा। इसी बीच कोई वैद्य को बुलाने दौड़ पड़ा, कोई उनकी माता जगरानी और कोई पिता सीतारामजी को इस घटना की खबर देने दौड़ा। इधर चन्द्रशेखर पर तो मानो जलने को कोई असर ही नहीं हुआ। वह वहां पर वैसे ही खड़ा-खड़ा हंस रहा था। उसने घबराकर भाग-दौड़ मचा रहे बच्चों को अपने पास बुलाया और कहा, "डर की कोई बात ही नहीं है। ये ज़ख्म

तो जल्दी ही ठीक हो जाएगा। शरीर पर तो किसी-न-किसी दिन और कभी-न-कभी चोट, मोच लगती ही है, फिर इससे इतना घबराना अच्छा नहीं है।''

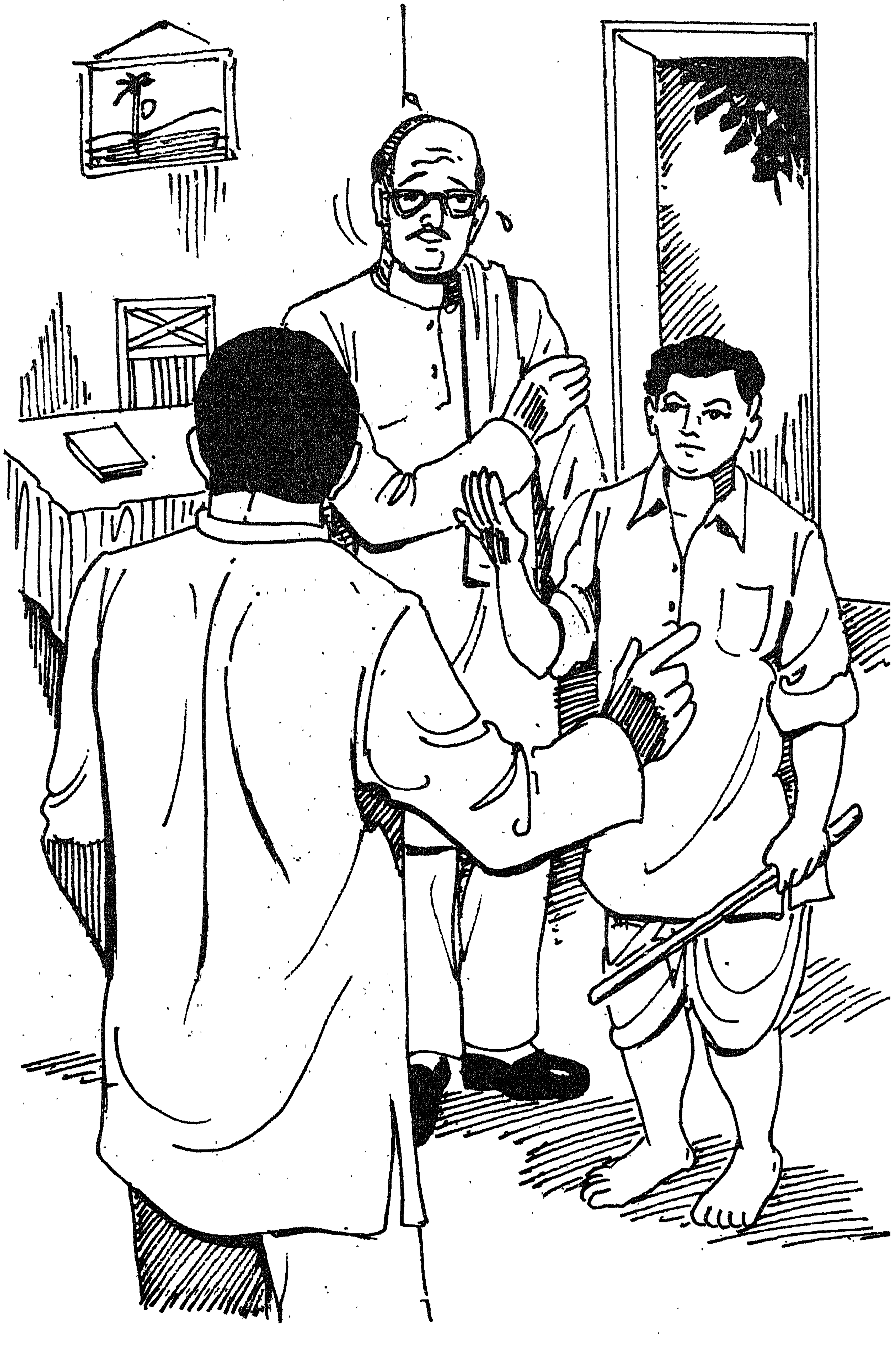
सभी बच्चे चन्द्रशेखर की साहस और वीरतापूर्ण बातों को सुनकर उसका मुख देखने लगे। इस प्रकार के दुःसाहसिक कार्य करना चन्द्रशेखर का निजी स्वभाव था। वस्तुतः यह उनके भावी जीवन का पूर्व संकेत था।

चन्द्रशेखर से पूर्व उनकी मां के चार पुत्र हुए थे। इनमें से सुखदेव ही जीवित रहे। शेष तीन भाई चन्द्रशेखर के जन्म से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गए। जिस समय चन्द्रशेखर काशी में पढ़ रहे थे, उनके बड़े भाई सुखदेव पोस्टमैन बन गए थे। यह नौकरी उन्होंने दो साल तक ही की थी कि उन्हें भयंकर निमोनिया हो गया। स्वास्थ्य लाभ हेतु उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। काफी चिकित्सा करा लेने के पश्चात् भी कोई अच्छा परिमाण नहीं निकल सका। अन्ततः जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष करते हुए सन् 1925 में उनका देहावसान हो गया। भाई की मृत्यु के समय चन्द्रशेखर का कोई पता न था।

शिक्षा

चन्द्रशेखर का विद्यार्थी जीवन पांच-छह वर्ष की अवस्था से आरम्भ हो गया था। वे अपने बड़े भाई सुखदेव के साथ-साथ गांव की पाठशाला में जाया करते। पिता सीताराम तिवारी ने पुत्रों की शिक्षा पर सामर्थानुसार खर्च किया था। पिता के मित्र श्री मनोहरलाल त्रिवेदी, जो किसी सरकारी पद पर कार्यरत थे, उन दिनों सुखदेव व चन्द्रशेखर को उनके घर पर भी पढ़ा जाते थे।

चन्द्रशेखर बचपन से ही न्यायप्रिय व उच्च विचारों वाले थे। एक बार जब त्रिवेदीजी दोनों भाइयों को पढ़ा रहे थे तो त्रिवेदीजी ने जान-बूझकर एक शब्द गलत बोल दिया। त्रिवेदीजी दोनों बच्चों को पढ़ाते समय डराने के लिए एक बेंत रखा करते थे। चन्द्रशेखर ने वही



बेंत उठाई और त्रिवेदीजी को दो बेंतें कसकर जमा दीं। इतने पर तिवारीजी दौड़ते हुए आए, वे चन्द्रशेखर की पिटाई करना चाहते थे, लेकिन त्रिवेदीजी ने उन्हें रोक दिया। जब चन्द्रशेखर से पूछा गया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया तो उनका यह उत्तर था।

''हमारी गलती पर ये हमें पीटते हैं तो इनकी गलती पर मैंने इन्हें बेंत मार दिया।''

चन्द्रशेखर जब चौदह वर्ष के हो गए तो एक दिन माता-पिता से कहने लगे, ''मुझे काशी भेज दें, मैं वहां पर पढ़-लिखकर विद्वान बनना चाहता हूं।''

माता-पिता की छोटी सन्तान होने के कारण चन्द्रशेखर उनकी आंखों का तारा था। वे लोग उसे एक पल के लिए भी अपनी नज़रों से दूर नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने बच्चे की इस बात को नहीं माना। इस प्रकार उन्हें काशी जाने की आज्ञा नहीं मिल पाई।

चन्द्रशेखर भी अपनी धुन के पक्के थे। एक बार वे जो बात मन में ठान लेते थे, उसे पूरा करके ही चैन लेते थे। माता-पिता से काशी में पढ़ने की अनुमति न मिलने पर अन्ततः एक दिन वे घर से भाग गए और लौटकर फिर वापस नहीं आए।

अक्सर छोटी-छोटी बातें भी बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं। ये छोटी-छोटी बातें भविष्य की बड़ी-बड़ी बातों के लिए आधार बनती हैं। चन्द्रशेखर का घर से भागना भी केवल उनके जीवन का ही नहीं, बल्कि पूरे देश के इतिहास में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। मां की ममता और पिता का स्नेह उन्हें किसी सीमा में न बांध सका। वे जैसे-तैसे काशी पहुंच ही गए। वहां पहुंचकर उन्होंने पिता को एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था, ''आप लोग मेरी किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें। मैं यहां पर पढ़ने के लिए आया हूं। आपके आशीष से यहां पर ठीक-ठाक हूं।''

काशी भारत का तीर्थ-स्थान होने के साथ-साथ, शिक्षा का भी केन्द्र है। कुछ दानी-धर्मात्माओं ने गरीब विद्यार्थियों के लिए मुफ्त खान-पान का प्रबन्ध किया था। विद्यार्थियों की वस्त्रादि आवश्यकताओं

के लिए, उन्हें कुछ रुपया मासिक खर्चे के रूप में दिया जाता था। यहीं पर चन्द्रशेखर का भी प्रबन्ध हो गया।

जलियांवाला बाग काण्ड

चन्द्रशेखर बनारस में संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे। उन्हीं दिनों भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी ने पदार्पण किया था। साथ ही देशभर में क्रान्तिकारी गतिविधियों तेज़ होने लगी थीं। ब्रिटिश सरकार भारतीयों को पूरी तरह दमन करना चाहती थी। इसके लिए सरकार ने दिसम्बर, 1917 में एक समिति का गठन किया। इस समिति में मुम्बई न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बेसिल स्कॉट, यू॰ पी॰ रेवेन्यू बोर्ड के सदस्य बर्ने लाइट, कलकत्ता उच्च न्यायालय के अधिवक्ता प्रभातचन्द्र मिश्र, मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश कुमार स्वामी शास्त्री और न्यायमूर्ति ए॰ एस॰ टी॰ रोलट आदि थे। समिति की अध्यक्षता जस्टिस रोलट कर रहे थे।

इस समिति के दो प्रमुख उद्देश्य थे। पहला भारतभर में क्रान्तिकारी गतिविधियों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना तथा दूसरा उन्हें दबाने हेतु कानून तैयार करना। स्पष्ट है कि इस समिति के गठन का उद्देश्य भारतीयों की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना था। सरकार ने तर्क रखा कि इस समिति का गठन सुधारों के लिए किया गया है।

गठन के कुछ समय पश्चात् इसने दो सौ छब्बीस पृष्ठों की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इस रिपोर्ट के आधार पर अंग्रेज़ों ने भारतीयों की स्वतन्त्रता और अधिकारों को और भी कम कर दिया गया। समिति की इस रिपोर्ट से न केवल क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन किया गया, बल्कि इसका उद्देश्य राजनीतिक आन्दोलनों को दबाना भी था। इसके माध्यम से राजनीतिक आन्दोलनों को राजद्रोह कहकर दबाया जा सकता था। पुलिस के दृष्टिकोण पर आधारित इस रिपोर्ट में गर्म दल के कांग्रेसियों—लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल आदि को चाफेकर बन्धुओं, खुदीराम बोस आदि क्रान्तिकारियों के समान बताया गया।

रोलट कमेटी की सिफारिशों से पुलिस को तानाशाही अधिकार मिल गए थे। वह जब और जिसे चाहे नज़रबन्द कर सकती थी, गिरफ्तार कर सकती थी, तलाशी ले सकती थी या जमानत मांग सकती थी। इसमें से कई सिफारिशें ऐसी थीं जिनसे अभियुक्तों को बिना पर्याप्त प्रमाणों के शीघ्रातिशीघ्र दण्डित किया जा सकता था। इस प्रकार की सिफारिशों से न्यायालयों की कार्यवाहियां भी प्रभावित होती थीं। रोलट बिल या एक्ट के नाम से जानी जाने वाली ये सभी सिफारिशें सरकार ने स्वीकार कर लीं।

रोलट एक्ट सन् 1919 के आरम्भ तक पास कर लिया गया था। इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही देशभर में असन्तोष ही लहर दौड़ गई। कांग्रेस ने इसे भारतीयों के मौलिक अधिकारों का हनन बताकर इसका विरोध किया।

महात्मा गांधी ने इस बिल के विरोध में सत्याग्रह करने की चेतावनी दी। उन्होंने 30 मार्च, 1919 को एक देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। 30 मार्च के दिन दिल्ली में एक सफल हड़ताल हुई। वहां आर्य समाज के प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में एक जुलूस निकाला गया। पुलिस के लाठीचार्ज और गोली मारने की धमकियों की परवाह किए बिना जुलूस आगे बढ़ता गया। दिल्ली रेलवे स्टेशन के सामने पुलिस ने जुलूस में भाग ले रही भीड़ पर गोलियां चली दीं। इसमें पांच व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और बीस व्यक्ति घायल हुए।

इस आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम एकता के अभूतपूर्व दर्शन हुए। 4 अप्रैल, 1919 को स्वामी श्रद्धानन्द ने दिल्ली की शाही जामामस्जिद के मीनार से वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अपना भाषण दिया। निःसन्देह यह एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना है। दासता की जंजीरों को काट डालने के लिए हिन्दुओं व मुसलमानों ने एक-दूसरे के कन्धे से कन्धा मिलाकर सरकार के इस बिल का पूर्ण विरोध किया।

रोलट बिल का विरोध केवल दिल्ली तक ही सीमित नहीं था, बल्कि देशभर में इसका घोर विरोध हुआ। सन् 1919 में अमृतसर में

कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। डॉक्टर किचलू तथा सत्यपाल इसकी तैयारियों में लगे हुए थे। अचानक ही सरकार ने दोनों को गिरफ्तार कर लिया और किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया। इस घटना से जनता में आक्रोश फैल गया। वह हिंसा पर उतर आई। अमृतसर की इन हिंसक घटनाओं में पांच गोरे मारे गए। कई मकानों में आग लगा दी गई, गुजरांवाला व कसूर (अब पाकिस्तान) में भी हिंसक घटनाएं हुईं।

डॉक्टर सत्यपाल ने गांधीजी को अमृतसर आने के लिए पत्र लिखा था। 8 अप्रैल को जब गांधीजी ने पंजाब के लिए प्रस्थान किया तो उन्हें रास्ते में पलवल (हरियाणा) स्टेशन पर ही गिरफ्तार कर मुम्बई भेज दिया गया।

इस दमन से पंजाब की जनता की भावनाएं और उग्र हो गईं। वहां स्थान-स्थान पर जुलूस निकाले गए, लोगों ने काले झण्डे का प्रदर्शन किया, सड़कें प्रदर्शनकारियों से ठसाठस भरी रहती थीं। जुलूसों के साथ-साथ हड़तालें भी की गईं, जगह-जगह पर 'रोलट बिल हाय-हाय' के नारे लग रहे थे और जॉर्ज पंचम के पुतले जलाए जा रहे थे।

पुलिस जब और जहां चाहती लाठीचार्ज करती रहती थी। बाज़ारों में प्रदर्शनकारियों को खुलेआम बेंत लगाना साधारण-सी बात हो गई थी। कई स्थानों पर तो पुलिस ने गोलियां भी चलाईं। पुलिस पकड़-धकड़ में लगी थी और जेलें ठसाठस भर गई थीं। ब्रिटिश सरकार ने प्रदर्शनों को रोकने और हड़ताल समाप्त करने के लिए हर सम्भव प्रयास किए थे, परन्तु इसका प्रभाव कहीं नज़र नहीं आ रहा था। लोग अब अपने निजी स्वार्थों से उठकर देशहित में आन्दोलन के भागीदार बन रहे थे।

13 अप्रैल, 1919 को वैशाखी का दिन था। रोलट बिल के विरोध में अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सभा हो रही थी। इस सभा में लगभग बीस हज़ार व्यक्ति उपस्थित थे। इनमें बच्चे, बूढ़े और युवा सभी अवस्था के स्त्री-पुरुष शामिल थे। जलियांवाला बाग चारों तरफ से दीवारों से घिरा हुआ था। इस चारदीवारी में आने-जाने का केवल

एक ही संकरा रास्ता था। इससे होकर वाहन आदि भी नहीं गुज़र सकता था।

सभा शान्तिपूर्वक चल रही थी। हंसराज नामक एक व्यक्ति सभा को सम्बोधित कर रहा था। अचानक ही वहां जनरल डायर आ धमका। उसके साथ डेढ़ सौ के लगभग हथियारबन्द सैनिक थे, जिनमें से लगभग पचास गोरे और एक सौ भारतीय सैनिक थे। डायर ने सैनिकों को बाग में एक ओर खड़ा कर बिना किसी चेतावनी के निहत्थी जनता पर गोली चलाने का आदेश दे दिया।

गोलियां चलते ही जनता में भगदड़ मच गई। बाहर निकल भागने का रास्ता अत्यन्त संकरा होने के कारण कुछ ही लोग बाहर निकल पाए। कई मिनटों तक लगातार गोलियां चलती रहीं और निरीह जनता के खून की होली खेली जाती रही। उस समय हिंसा का नग्न ताण्डव मचा हुआ था। कई लोग तो अपनी जान बचाने के लिए वहां के एकमात्र कुएं में ही कूद गए, उनमें से भी कुछ ही लोग बच पाए।

जलियांवाला बाग के इस गोलीकाण्ड में कुल सोलह सौ गोलियां चली थीं। दूसरे दिन सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसके अनुसार इसमें चार सौ व्यक्तियों की मृत्यु हुई तथा दो हज़ार व्यक्ति घायल हुए। सरकार ने इस घटना की सही रिपोर्ट नहीं दी थी। बाद में इसकी जांच के लिए कांग्रेस ने एक आयोग गठित किया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार ज़लियांवाला बाग में मरने वाले और घायल हुए लोगों की संख्या सरकारी रिपोर्ट से लगभग दोगुनी से अधिक थी।

बाद में जनरल डायर ने जांच पर बैठे हन्टर कमीशन के सामने अपना बयान दिया था। अपने बयान में उसने बताया कि उसने गोली चलाने से पहले लोगों को तितर-बितर हो जाने के लिए कह दिया था। उसके अनुसार आदेश के बावजूद जनता ने उठने से इन्कार कर दिया तो उसने गोली चलवा दी। वास्तव में यह सब कुछ झूठ था। यदि डायर भीड़ को तितर-बितर हो जाने का आदेश दे देता तो भी इतने लोग एक

संकरे रास्ते से बहुत जल्दी बाहर नहीं निकल सकते थे। दूसरी बात यह समझ में नहीं आती कि ऐसी कोई परिस्थिति नहीं बनी थी कि ज़रा-सी बात पर हज़ारों लोगों को भून डाला जाता।

यह सब ब्रिटिश सरकार की पहले से तय योजना के अन्तर्गत ही हुआ था। सरकार ने पंजाब में बढ़ते हुए इस आन्दोलन को पनपने से पहले ही नोंच डालने का यत्न किया था। इस काण्ड के बाद भी सरकार ने मार्शल लॉ लगा दिया अतः सरकार की क्रूरता में कोई कमी नहीं आई। राह चलते लोगों को बेंतों से पीटा जाता था और छाती के बल रेंगकर चलने के लिए विवश किया जाता था। सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार करवाकर जेलों में भर दिया गया था। गोलीकाण्ड के बाद अमृतसर के लिए बिजली और पानी की आपूर्ति बन्द कर दी गई। वहां पर सैनिक कानून लागू कर दिया गया और वस्तुओं के भाव सेना की इच्छानुसार तय किए जाने लगे। बहुत-से स्थानों पर यह नियम बनाया गया कि हर भारतीय प्रत्येक गोरे को सलाम करे। स्कूलों में पढ़ाई के बीच-बीच में बच्चों से दिन में तीन बार ब्रिटिश झण्डे के सामने सलामी करवाई जाती थी। उनसे प्रतिज्ञा करवाई जाती थी कि वे भविष्य में सरकार के प्रति कोई अपराध नहीं करेंगे।

बन्दी बनाए गए लोगों को जेल की सलाखों के पीछे इस तरह से ठूंसा जाता था, जैसे भेड़-बकरियों को ठूंसा जाता है। एक-एक कोठरी में पचासों आदमी बन्द कर दिए जाते थे। कभी-कभी एक हिन्दू और एक मुसलमान को एक साथ बांधकर जुलूस निकाला जाता था। इस प्रकार के जुलूस से ब्रिटिश सरकार हिन्दू-मुस्लिम एकता की खुले रूप से हंसी उड़ाया करती थी।

पंजाब की उन समस्त घटनाओं से पूरे भारतवर्ष में क्षोभ का वातावरण पैदा हो गया था। बनारस में अध्ययनरत चन्द्रशेखर इन सब घटनाओं से अपरिचित नहीं थे। अंग्रेज़ी शासन के अत्याचारों की घटनाएं उन्हें समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिल जाती थीं। इन अत्याचारों से किशोर चन्द्रशेखर का खून खौल उठता था। वे ब्रिटिश सरकार द्वारा


जलियाँ वाला
बाग का बदला
लेना है।

अपने देशवासियों पर किए जा रहे अत्याचारों का प्रतिशोध लेना चाहते थे। इस समय चन्द्रशेखर चौदह वर्ष के हो गए थे।

एक रात हवालात में

सन् 1921 में ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में सारे देशभर में चेतना की एक लहर-सी फैल गई। सभी देशवासी विदेशी शासन का तख्ता पलटने के लिए एक साथ कटिबद्ध हो गए थे। हिमालय से कन्याकुमारी, अन्तरीप तक, गांव-गांव, नगर-नगर और स्थान-स्थान पर स्वदेशी के लिए आन्दोलन भड़क उठा था।

लोगों द्वारा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए दुकान-दुकान पर धरने दिए जाने लगे। हर तरफ विदेशी वस्तुओं की होली जलाई जाने लगी।

ब्रिटिशराज इस आन्दोलन का जल्दी-से-जल्दी दमन करना चाहता था। फिरंगियों ने आन्दोलनकारियों पर कई तरह से रोक लगाने की कोशिशें कीं। आन्दोलनों की बाढ़-सी आ गई थी। शासन द्वारा भारतीयों पर जगह-जगह लाठीचार्ज करवाया जाने लगा, कई लोगों को जेलों में बन्द कर दिया गया। सरकार के दमन का घोर विरोध होने लगा। जनता ने हड़तालें करनी शुरू कर दीं, हर दिन जुलूस निकलने लगे, धरने दिए गए। सारा देश एकजुट हो गया, हर तरफ आन्दोलन की आग फैल गई, स्वराज्य की मांग उठने लगी, अब कोई भी इस हलचल में पीछे नहीं रहा।

राष्ट्रीयता का रंग हर तरफ फैला था। यहां तक कि कई स्थानों पर राष्ट्रीयता स्कूल, कॉलेज खोले जा रहे थे, ताकि स्वदेशी शिक्षा प्रणाली से लोगों में राष्ट्रीयता की भावना घर करे और अधिक-से-अधिक लोग इस संग्राम में भाग लें।

इस परिवर्तन को देखते-देखते चन्द्रशेखर पन्द्रह वर्ष का किशोर हो चुका था। वह भी आन्दोलन की आग में कूदना चाहता था। उसका हृदय देश को स्वतन्त्र कराने के लिए मचल रहा था। वह उस मचलाहट से उत्साहित हो रहा था। वह अपने आसपास के वातावरण से बहुत-सी

बातें ग्रहण करने लगा था। सत्याग्रहियों के साथ-साथ जाना उसे अच्छा लगता। जहां भी जुलूस, हड़तालें हो रही हों, चन्द्रशेखर तत्काल वहां पहुंच जाते। वह सत्याग्रहियों के कार्यकलापों को बड़े ध्यान से देखता। वह भी जनता के साथ ब्रिटिशराज के खिलाफ नारे लगाता तथा उन सबका उत्साहवर्धन करता।

एक स्थान पर ब्रिटिशराज के पुलिसकर्मी सत्याग्रहियों को डण्डों से पीट रहे थे। सत्याग्रही पुलिसकर्मी द्वारा पकड़-पकड़कर घसीटे जा रहे थे। उन्हें कड़ी यातनाएं दी जा रही थीं। चन्द्रशेखर अपनी आंखों के सामने यह सब होता देखकर चुप नहीं रह सका। उसका खून उबल पड़ा। जो पुलिसकर्मी बाकी जवानों को नियन्त्रित कर रहा था, चन्द्रशेखर ने क्रोध में भरकर उसके माथे पर एक पत्थर दे मारा, पत्थर सीधा पुलिस अधिकारी के माथे पर जा लगा। निशाना अचूक था, पत्थर पुलिस अधिकारी को लहूलुहान कर गया। माथे से निकले खून से उसकी वर्दी तर हो गई।

इस काण्ड ने पुलिसकर्मियों में खलबली मचा दी। अब पत्थर फेंकने वाले की खोज होने लगी। चन्द्रशेखर इससे पहले ही उन सबकी आंखों में धूल झोंककर निकल भागने में सफल हो गया था, फिर भी एक पुलिसकर्मी ने उसे पहचान ही लिया। चन्द्रशेखर माथे पर चन्दन का टीका लगाया करता था। पत्थर फेंकते समय चन्द्रशेखर के माथे पर चन्दन का वही टीका लगा था। पुलिस के एक सिपाही की स्मृति में वह टीका रह गया। उसे विश्वास था कि अगर लड़के को एक बार देख ले तो उसे ज़रूर पहचान लेगा। पुलिस का एक दल सारे नगर में घूमता रहा, अन्त में वे लोग चन्द्रशेखर के ठिकाने पर भी पहुंच गए।

उसका कमरा कई क्रान्तिकारियों के चित्रों से सजा हुआ था। दीवारों पर महात्मा गांधी, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, पण्डित मोतालाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय आदि कई महान गणनायकों की तस्वीरें लगी थीं। चित्रों पर फूल-मालाएं चढ़ाई गई थीं। सिपाही ने क़मरे को ध्यान से देखा। अचानक उसकी दृष्टि चन्द्रशेखर के माथे पर



आकर ठहर गई। वह कमरे में राष्ट्रीयता का वातावरण और चन्द्रशेखर के माथे पर तिलक देखकर भांप गया कि यह लड़का वही है, जिसने पुलिसकर्मी को लहूलुहान किया था। सिपाही ने तुरन्त आगे बढ़कर चन्द्रशेखर के हाथों में हथकड़ियां डाल दीं।

हाथों में हथकड़ियां लग जाने पर भी चन्द्रशेखर डरे नहीं। उनके चेहरे पर किसी प्रकार की शिकन नहीं थी। उनका मन ज़रा भी विचलित नहीं हुआ।

हथकड़ी लगाने के तुरन्त बाद उन्हें थाने लाया गया। अब वे हवालात में बन्द थे। जाड़ों के दिन थे, किटकिटाती सर्दी पड़ रही थी, रात्रि के समय उन्हें कोई भी वस्त्र नहीं दिया गया। एक लंगोट पहने हुए और कुर्ता डाले हुए चन्द्रशेखर के पास न कुछ ओढ़ने के लिए था और न कुछ बिछाने के लिए ही। पुलिस अधिकारी ने तो समझा था कि वह एक साधारण छोकरा ही था और ज़रा-से जोश में आकर गलती कर बैठा। रात को थोड़ी ठण्डक में रहेगा तो स्वयं अपनी गलती के लिए क्षमा मांगने लगेगा।

चन्द्रशेखर को सींखचों में बन्द कर थाना इन्चार्ज सोने चला गया। बीच में उसकी नींद टूटी। यही कोई दो बजे का समय था। तापमान बहुत कम होता जा रहा था। ठण्ड काफी बढ़ चुकी थी। इन्चार्ज ने सोचा, "क्यों न लड़के को देखा जाए। बेचारा सर्दी से जम गया होगा।"

थाना इन्चार्ज ने सींखचों के पार देखा, चन्द्रशेखर वही लंगोट पहने हुए हाथों से डण्ड पेल रहे थे। उनके सारे शरीर पर पसीना चू रहा था। इन्चार्ज देखकर चौंक गया। उसे काफी आश्चर्य हुआ, वह चुपचाप थोड़ी देर तक उन्हें देखता रहा, फिर उल्टे पांव लौट आया और पहले की तरह सो गया।

नया नामकरण

स्वतन्त्रता आन्दोलन की आग चारों तरफ धधक रही थी। उधर काशी में उन्हीं दिनों एक नया न्यायाधीश आया था, जो पारसी था। उसका

नाम खेरफाट था। अपनी कठोरेता के लिए वह काफी नाम कमा चुका था। आन्दोलनकारियों के प्रति उसका व्यवहार बहुत ही सख्त था। वह उन्हें कठोर-से-कठोर दण्ड दिया करता था। उसी की न्यायालय में दूसरे दिन चन्द्रशेखर को भी ले जाया जाना था।

न्यायालय लगी हुई थी, कटघरे में एक सुन्दर, गठीले बदन का नौजवान लड़का खड़ा था। लड़के को देखकर निर्दयी न्यायाधीश के हृदय में भी थोड़ी दया की भावना जाग्रत हो रही थी। उसने कटघरे में खड़े नवयुवक चन्द्रशेखर से बहुत साधारण भाव में पूछा, ''लड़के, तुम्हारा नाम क्या है?''

''आज़ाद!'' लड़के ने गम्भीर और निडर स्वर में जवाब दिया।

''पिता का नाम?''

''स्वतन्त्र!''

न्यायाधीश अपने प्रश्नों का उत्तर इस तरह ललकारती आवाज़ में सुनकर तमतमा उठा।

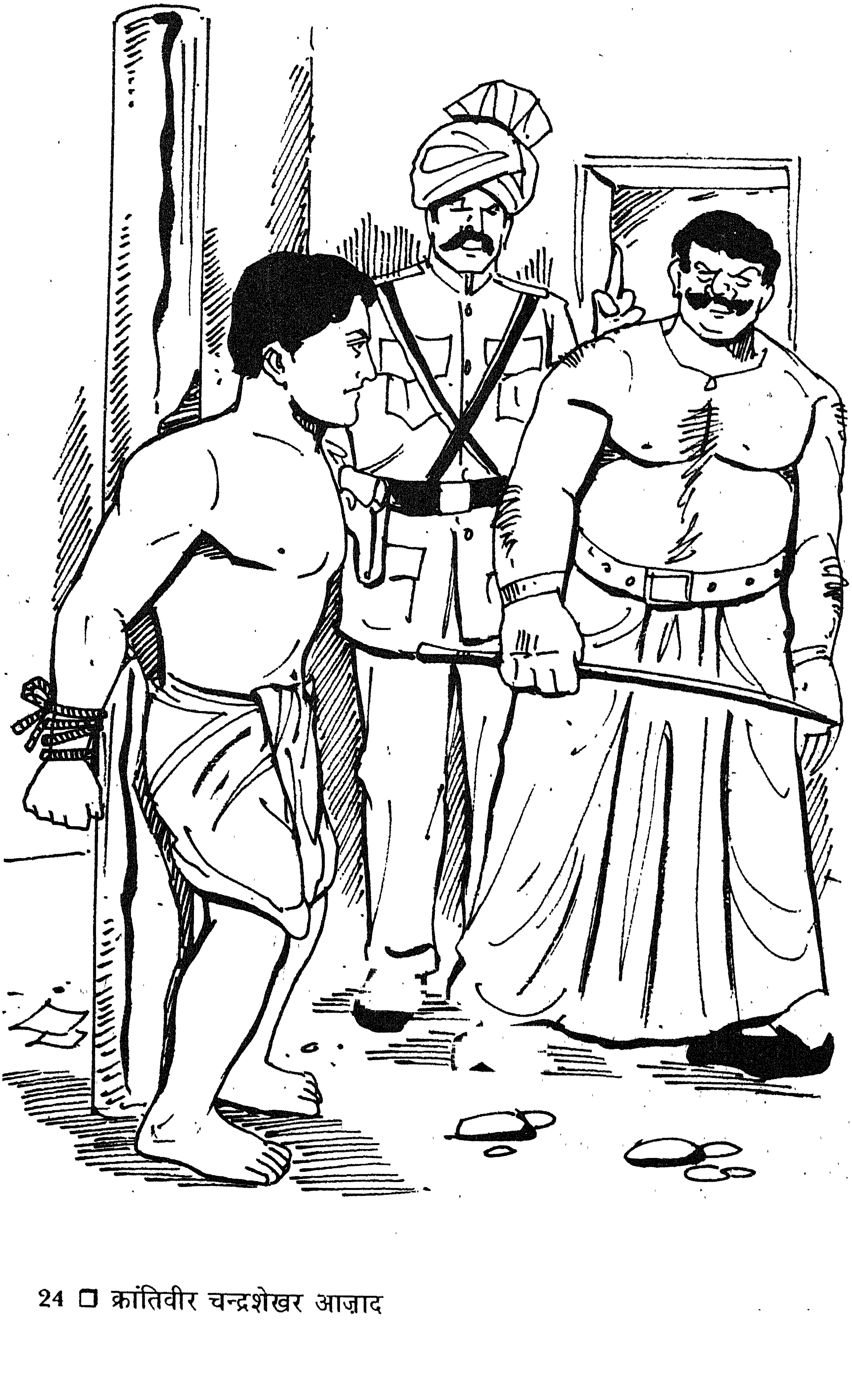
न्यायाधीश ने तीसरा प्रश्न किया, ''तुम्हारा घर कहां है?''

''जेलखाना!''

उत्तर को सुनकर न्यायाधीश बुरी तरह गुस्से में जल-भुन गया। झल्लाकर उसने चन्द्रशेखर को पन्द्रह बेंतों का कठोर दण्ड ने दिया।

पहले तो न्यायालय में थोड़ी-बहुत आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। न्यायाधीश के इस आदेश को सुनकर न्यायालय में सनसनी फैल गई। बेंतों का दण्ड बड़ा भयानक दण्ड होता है और पन्द्रह बेंतों की सजा शरीर से खाल उखाड़ देने के लिए काफी थी। सन्तरी के हाथों से तेल का भीगा हुआ बेंत जब शरीर पर चोट करता है तो चमड़ी बेंत के साथ लिपटकर छिल जाती है अच्छे-अच्छे धैर्यवान लोग भी बेंत की सज़ा के आगे पानी मांगने लगते हैं। बेंत की एक चोट जब चमड़ी छीलती है तो अच्छे-अच्छे रोने-चिल्लाने लगते हैं।

सरदार गण्डासिंह, कठोर और निर्दयी जेलर, उन दिनों बनारस का जेलर था। बड़े-बड़े कैदी उसके नाम से कांपते थे।



अब चन्द्रशेखर को गण्डासिंह के सामने पेश किया गया। खाली लंगोट छोड़कर बाकी सभी कपड़े चन्द्रशेखर के शरीर के उतरवा लिए गए। उन्हें अब नंगे शरीर पर बेंत लगाने के लिए तैयार किया गया। शरीर पर बेंत लगाने से पहले, लगाई जाने वाली दवा का लेप लगाया गया, उसके बाद उन्हें टिकटिकी पर बांध दिया गया। चन्द्रशेखर अभी भी निडर होकर मुस्करा रहे थे। उनके चेहरे भाव-भंगिमा से उनकी स्थिति का अनुमान लगाना कठिन था। जेलर गण्डासिंह उन्हें मुस्कराता देखकर मन में सोच रहा था कि दो बेंत पड़ते ही लड़के की बुद्धि ठिकाने आ जाएगी, सारी अकड़ भूल जाएगा।

जेलर गण्डासिंह ने सन्तरी को बुलाया। अब सन्तरी को आज्ञा दी गई वह बेंत लगाना आरम्भ करे, साथ ही जेलर ने गिनना भी शुरू किया, "एक!"

सन्तरी ने तेल से भीगा बेंत चन्द्रशेखर की पीठ पर सटाक से दे मारा। बेंत की आवाज़ के साथ ही वीर चन्द्रशेखर के मुंह से जयघोष हुआ, 'भारत माता की जय!' पहले बेंत ने ही पीठ से चमड़ी को बुरी तरह खींच डाला, लेकिन चन्द्रशेखर के मुंह से एक आह न निकली।

एक बार फिर जेलर कड़क आवाज़ में गरजा, "दो!" सन्तरी ने पूरी शक्ति से फिर बेंत लहराया, बेंत की आवाज़ के बाद एक आवाज़ और गूंजी, 'भारत माता की जय!'

पीठ से चमड़ी उधड़कर लटकने ही वाली थी। खून बुरी तरह से बह रहा था, फिर भी चन्द्रशेखर के चेहरे पर पीड़ा का कोई भाव न था। सबसे निर्दयी व्यक्ति गण्डासिंह, जो सन्तरियों का भी सन्तरी था, यह देखकर दांतों तले अंगुली दबा गया।

गण्डासिंह तीसरी बार चिल्लाया, "तीन!" सन्तरी ने अधिक-से-अधिक शक्ति लगाकर तीसरा बेंत मारा। फिर भी चन्द्रशेखर के मुंह से एक ही सिंहनाद निकला, 'भारत माता की जय!'

तीसरा बेंत लगने के बाद चन्द्रशेखर की पीठ पर अब बड़े-बड़े घाव हो चुके थे। घावों से मांस और रक्त बाहर को उमड़ रहा था,

लेकिन आज़ादी का मतवाला चन्द्रशेखर पूर्ण रूप से शान्त था।

न्यायालय के सभी लोग उस समय ठगे-से खड़े थे। सन्तरी का काम जारी था, वह बेंत-पर-बेंत मारे जा रहा था। एक तरफ सटाक-सटाक की आवाज़ उभरती तो दूसरी तरफ चन्द्रशेखर का सिंहघोष। आवाज़ें हॉल में दूर तक गूंज जातीं जो सबको हिलाकर रख देती। आवाज़ दीवारों से टकरा-टकराकर पुकारती; 'भारत माता की जय!'

चन्द्रशेखर का सारा शरीर खून से लहूलुहान हो रहा था। मांस की चीथड़े बाहर निकल आए थे। चमड़ी चटक-सी रही थी। मां भारती के सच्चे सपूत के चेहरे पर अभी भी पीड़ा का कोई भाव न था।

चारों तरफ यही जयघोष था, 'भारत माता की जय; इन्कलाब जिन्दाबाद!' वातावरण नारों की गूंज में पूरी तरह डूबा हुआ था। अदालत के बाहर फाटक पर भी हज़ारों की संख्या में भीड़ जमा हो गई थी। सजा के बाद चन्द्रशेखर जैसे ही बाहर आए, जनता ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया। भारत माता के नारे लगाए गए तथा ब्रिटिशराज के प्रति विरोध प्रकट किया गया।

लोगों की बीच से कभी आवाज़ आती, 'नौकरशाही मुर्दाबाद!' कभी आवाज़ आती, 'अत्याचारियों का नाश हो!' तो कभी, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है!'

चन्द्रशेखर पर फूलों की वर्षा हो रही थी, उसका लहू-लुहान शरीर फूल-मालाओं से लद चुका था। बनारस के ज्ञानवापी मुहल्ले में क्रान्ति की एक लहर-सी दौड़ गई थी। शाम के समय एक सभा का आयोजन होना था। नगर के हर-एक छोर से लोगों की भीड़ सभी-स्थल की ओर उमड़ रही थी। बच्चे, बूढ़े और जवान, सभी क्रान्ति के इस महान नायक के दर्शनों को लालायित थे।

शाम तक मंच तैयार था। लोग हज़ारों की संख्या में वहां पहुंचे हुए थे। चन्द्रशेखर ने मंच पर पहुंचकर लोगों का अभिवादन किया। जनता की आंखों में प्रेम, श्रद्धा और करुणा के आंसू भर आए। चन्द्रशेखर देखने में सुन्दर, गठे हुए शरीर वाला युवक था। वह क्रान्ति का दूत,

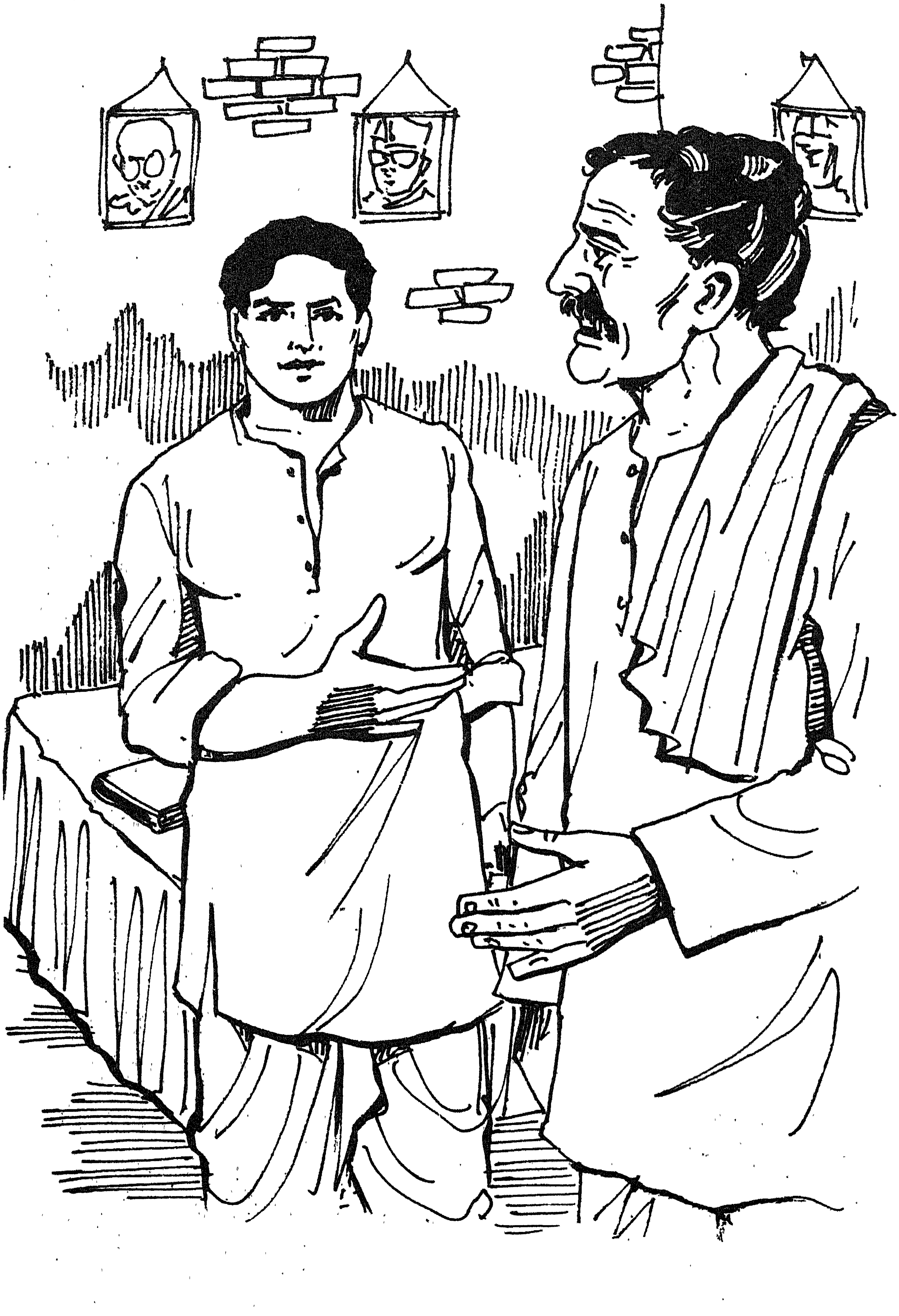
स्वाभाविक रूप से ही आज़ाद लगता था। उसने अपना नाम यदि आज़ाद बताया तो वह नाम उसके गुणों के अनुसार ही था।

उनके दर्शन होते ही मंच पर चारों तरफ से रंग-बिरंगे फूलों की बारिश होने लगी। पूरा मंच फूलों से लद गया। सभी लोगों में क्रान्ति की भावना जाग उठी थी, वे 'भारत माता की जय' और 'चन्द्रशेखर आज़ाद की जय' के नारों से जय-जयकार करने लगे। आज़ाद के शरीर पर लगे घावों को देखकर जनता में शासन के प्रति आक्रोश उत्पन्न हो गया था। वे सभी ब्रिटिश साम्राज्य की विरोध के नारे लगाने लगे।

उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमन्त्री तथा स्वतन्त्रता सेनानी श्री सम्पूर्णानन्दजी उन दिनों 'मर्यादा' नामक पत्रिका का सम्पादन करते थे तथा शिवप्रसाद गुप्तजी इसका प्रकाशन करते थे। दूसरे दिन उस पत्रिका में आज़ाद का चित्र छापा गया। साथ में ब्रिटिश सरकार के प्रति एक लेख भी प्रकाशित किया गया। यह सब नौकरशाही द्वारा किए जा रहे अत्याचारों का भण्डाफोड़ करने के उद्देश्य से था, ताकि सभी लोग स्वतन्त्रता के लिए लड़े जा रहे इस आन्दोलन में समान रूप से भाग लें और ब्रिटिशराज का पूर्ण विरोध हो। इस लेख में आज़ाद के वीरतापूर्ण कार्य और साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

यद्यपि न्यायाधीश खेरफाट ने चन्द्रशेखर को सबक सिखाने के उद्देश्य से 'बेंतों' की सज़ा दी थी, परन्तु इस सज़ा के बाद चन्द्रशेखर के हृदय में मातृभूमि के प्रति प्रेम और भी दृढ़ हो गया।

वास्तव में शरीर की स्वतन्त्रता को छीना जा सकता है, परन्तु मन की स्वतन्त्रता कोई नहीं छीन सकता। व्यक्ति के शरीर को बन्दी बनाया जा सकता है, मन को नहीं। सच्चे स्वतन्त्रता प्रेमी दमनकारी शासन की आंखों में किरकिरी बनकर रहते हैं। यही कारण है कि उनका जीवन अधिकतर कारागारों में ही बीतता है। ब्रिटिश शासन के समय सभी देश-प्रेमी नेताओं का घर जेल में ही बन गया था। न्यायालय के पूछने पर चन्द्रशेखर ने अपना घर जेल को ही बताया। इस प्रकार उनके उत्तर में एक गहरा और गम्भीर अर्थ छिपा हुआ था।



उनके इस उत्तर में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतवासियों पर किए जा रहे अत्याचारों का संकेत मिलता था।

बेंतों के दण्ड की इस घटना के किशोर चन्द्रशेखर को एक लोकप्रिय नेता के रूप में प्रसिद्ध कर दिया था। वास्तव में यह घटना चन्द्रशेखर के भावी क्रान्तिकारी जीवन के लिए प्रथम सोपान थी। इस घटना के बाद वह 'चन्द्रशेखर' से 'वीर चन्द्रशेखर आज़ाद' बने थे।

जेल के नियमों के अनुसार आज़ाद को रिहा होते समय तीन आने दिए जाने थे। बेंतों की सज़ा के बाद जब जेलर गण्डासिंह ने उन्हें पैसे पकड़ाए तो आज़ाद ने पैसे उसी के मुंह पर दे मारे और चले गए। इस प्रकार से आज़ाद ने एक बार फिर अपने साहस और स्वाभिमान का परिचय दिया था।

एक नवयुवक को बेंतों की सज़ा का यह समाचार देश के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था, अतः जल्दी ही इस घटना की खबर चन्द्रशेखर के घर वालों तक भी पहुंच गई। समाचार पढ़कर पिता सीताराम तिवारी बहुत चिन्तित हुए। वे तुरन्त ही बनारस पहुंच। बनारस पहुंचकर उन्होंने चन्द्रशेखर को काफी समझाया-बुझाया कि वे उनके साथ घर लौट चलें। चन्द्रशेखर बचपन से जिद्दी थे और अब तो वे देश-सेवा का व्रत ले चुके थे। उनके लिए अपना लक्ष्य ही सबसे महान था। महापुरुष जिस कार्य को करने की ठान लेते हैं, दुनियाभर की विपत्तियां आ जाने पर भी वे अपने मार्ग से विचलित नहीं होते। चन्द्रशेखर ने अपने पिता का प्रस्ताव कतई स्वीकार नहीं किया। निराश होकर श्री सीताराम तिवारीजी वापस घर लौट आए।

वस्तुतः आज़ाद की दृष्टि में सारा देश ही अपना घर था। देश-हित के लिए पारिवारिक मोह का त्याग उनकी विशाल हृदयता को स्पष्ट करता है। वे पारिवारिक मोह के विचार को संकीर्ण मानते थे। इस प्रकार आज़ाद ने मातृभूमि के लिए पारिवारिक मोह-ममता को तिलांजलि दे दी।

क्रान्ति की राह पर

चन्द्रशेखर अब क्रान्ति की राह पर अग्रसर हो चले थे। देशभक्ति के रंग में वे कुछ इस तरह रंग गए थे कि उनका मन पढ़ाई में नहीं लग पाया। वे अपने सहपाठियों को भी ब्रिटिश सरकार के विरोध में खड़ा कर देना चाहते थे। आज़ाद देश की स्वतन्त्रता का ही स्वप्न देखा करते थे। उनके मन में कई उमंगें थीं, वे आज़ादी के लिए कुछ करना चाहते थे।

उस समय गांधीजी असहयोग आन्दोलन चला रहे थे। उनका यह आन्दोलन पूरे ज़ोर पर था। फिर भी गोरखपुर के पास चौरीचौरा नामक स्थान पर होने वाली एक घटना के कारण महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया।

घटना कुछ इस प्रकार थी कि पूरी तरह अहिंसात्मक ढंग से चल रहे आन्दोलन के समय, गोरखपुर के चौरीचौरा नामक स्थान पर कुछ आन्दोलनकारियों की एक भीड़ ने दमन से परेशान होकर धैर्य खो दिया। आन्दोलनकारियों की एक भीड़ ने चौरीचौरा के थाने में आग लगा दी। इस आग में थाने का दारोगा और इक्कीस सिपाही जल मरे।

यह घटना 12 फरवरी, 1922 को घटित हुई थी। इतिहास में इस घटना को चौरीचौरा काण्ड के नाम से जाना जाता है।

आन्दोलन के दौरान हुई इस हिंसा को देखते हुए गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन रोक दिया। इसके ठीक दूसरे ही दिन गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया।

भारतीयों का उत्साह इस समय चरमबिन्दु पर था। महात्मा गांधी के इस निर्णय से सभी को निराशा हुई। यह आश्चर्य की ही बात है कि आन्दोलन वापस लेने के तुरन्त बाद गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। वास्तव में आन्दोलन के समय गांधीजी के साथ देश की पूरी जनता थी। आन्दोलन के स्थगित होने पर लोगों की उमंगों पर पानी फिर गया और गांधीजी अकेले पड़ गए।

आन्दोलन के बीच में रुक जाने के कारण विशेषकर युवा वर्ग को

बड़ी निराशा हुई। चन्द्रशेखर को भी इससे तीव्र आघात लगा, परन्तु वे विचलित नहीं हुए। वे जिस राह पर अग्रसर हुए थे, उससे पीछे लौट आने का छोटा-सा विचार भी उनके मन में नहीं आया।

चन्द्रशेखर आन्दोलन में गहरी रुचि लेने लगे थे। सक्रिय रूप से भाग लेने की स्थिति में उनकी पढ़ाई में व्यवधान आने लगा। अन्ततः आज़ाद ने पढ़ाई से मुक्ति पा ली। पढ़ाई छोड़ने के साथ ही वे अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु उचित संगठन की खोज करने लगे।

अब तक क्रान्तिकारी युवक अनेकों बार अपने कार्यों से सरकार को चुनौती दे चुके थे। बनारस भी क्रान्ति की इन चिंगारियों से अछूता नहीं था। क्रान्तिकारी गतिविधियों में बंगाल के क्रान्तिकारियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही थी। बंगाल प्रान्त से इन क्रान्तिकारियों ने दूर-दूर तक जाल बिछाया हुआ था। बनारस-षड्यन्त्र के नेता शतीन्द्रनाथ सान्याल को आजन्म कालेपानी की सज़ा तथा अन्य लोगों को भी अनेक प्रकार की सज़ाएं होने के साथ कुछ समय के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन रुक सा गया।

सन् 1920 में सभी राजनीतिक बन्दियों को माफ कर दिया गया था। इस प्रकार उसी समय ये सभी क्रान्तिकारी भी जेल से छूट गए थे। गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन वापस लेने पर वैसे भी युवा वर्ग खिन्न था। शतीन्द्रनाथ सान्याल ने अवसर का लाभ उठाते हुए पुनः एक क्रान्तिकारी दल का गठन कर लिया।

सान्याल ने शीघ्र ही क्रान्तिकारी दल को सुदृढ़ बना लिया। उनकी गतिविधियों का मुख्य क्षेत्र उत्तर-प्रदेश ही था।

उसी समय बंगाल में 'अनुशीलन समिति' नामक क्रान्तिकारी संस्था कार्य कर रही थी। शतीन्द्रनाथ सान्याल का क्रान्तिकारी दल तथा 'अनुशीलन समिति' लम्बे समय से अलग-अलग कार्य करते रहे थे, परन्तु उनके उद्देश्य व कार्य-प्रणालियां समान ही थीं।

बाद में इन दोनों ने मिलकर एक संयुक्त दल बना लिया। इस दल का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया। संगठित

क्रान्ति द्वारा गणतन्त्र की स्थापना करना, नागरिकों को मताधिकार प्राप्त कराना, समाज के शोषित वर्ग का उत्थान करना आदि इस एसोसिएशन के मुख्य उद्देश्य थे।

वास्तव में इस क्रान्तिकारी संगठन पर रूसी साम्यवाद की छाप थी। अभी कुछ वर्ष पूर्व सन् 1917 के रूस में साम्यवादी शासन प्रणाली लागू हुई थी।

'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के सदस्य पूरे उत्तर प्रदेश में फैल चुके थे। बनारस में श्री राजेन्द्र लाहीड़ी, श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी तथा श्री रवीन्द्रमोहन इस दल के संगठन को गति प्रदान कर रहे थे।

इन्हीं दिनों बनारस में रह रहे आज़ाद की भेंट दल के संगठनकर्ता प्रणवेश से हो गई। प्रणवेश ने आज़ाद से अत्याधिक प्रभावित होकर उन्हें अपने दल में शामिल कर लिया। 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' का सदस्य बन जाने पर यहीं उनकी भेंट रामप्रसाद बिस्मिल आदि महान क्रान्तिकारियों से हुई। यहीं से उनके भावी क्रान्तिकारी जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ।

धन का अभाव

हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का सदस्य बन जाने पर आज़ाद सक्रिय हो गए थे। उनके दल के सभी साथी नवयुवक ही थे, जिनमें वीरता और साहस कूट-कूटकर भरा पड़ा था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी थी। भूखे-प्यासे रहते हुए और अपनी जान की परवाह न करते हुए वे विदेशी शासन का तख्ता उलट देने के लिए संघर्ष करते रहते थे। उस समय एसोसिएशन की सदस्यता का विस्तार किया जाना निश्चित किया गया। इस कार्य में आज़ाद ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। वह ब्राह्मण के वेश में इधर-उधर घूमते रहते तथा युवकों से मिलकर उनके विचार जानते। क्रान्तिकारी विचारों वाले युवकों को वे दल में शामिल कर लेते।

इस प्रकार थोड़े ही समय में आज़ाद के प्रयत्नों से दल से सदस्यों

की संख्या बढ़ने लगी, किन्तु दल के पास धन का अभाव था। दल की सुदृढ़ता के लिए अब धन की भारी आवश्यकता महसूस हुई। निदान यही था कि पूंजीपतियों के घरों पर डाके डाले जाएं और अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा किया जाए।

सन्ध्या का समय था। दल के चुने हुए कुछ लोग रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में डाका डालने निकल पड़े। उनका विचार फतेहपुर के पास गांव में डाका डालने का था। जैसे ही वे उस गांव में घुसे, लोगों ने उनसे पूछा, "आप सब कहां जा रहे हैं?"

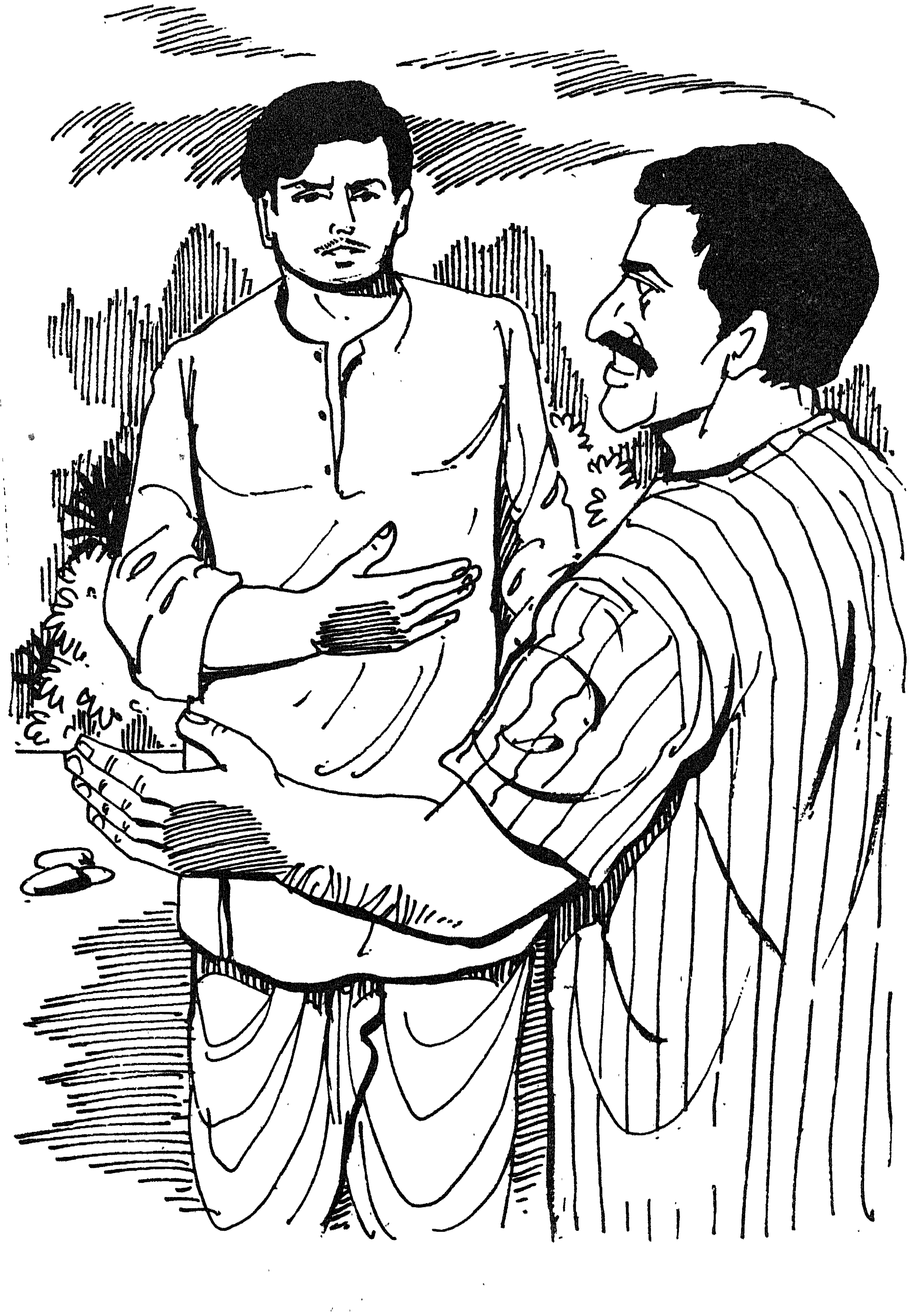
"गांव के मुखिया के यहां से हमको निमन्त्रण है। हम वहीं जा रहे हैं।" उन्होंने उत्तर दिया।

कुछ ही देर में मुखिया के घर पर शोरगुल मच गया। देखते-ही-देखते वहां खूब भीड़ जमा हो गई। दल के लोगों ने मुखिया के घर लूट-मार मचा रखी थी। गांव वालों से मुठभेड़ के लिए उन्होंने पिस्तौलें निकाल ली थीं और धन लूटने में लगे थे। दल के नेता रामप्रसाद बिस्मिल के पूर्व कथन के अनुसार स्त्रियों को हाथ तक नहीं लगाया जाना था, चाहे वे आक्रमण ही क्यों न करे दें। उनका विचार था, जिस देशभक्त को स्त्री का सम्मान करना न आता हो, वह देश-भक्ति के उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकता।

पुरुषों को तो उन लोगों ने डराकर भगा दिया, स्त्रियों से कुछ कहा तक नहीं। वे आगे बढ़ आईं और ये चुपचाप ही रहे। उन्होंने दल के सदस्यों की नीति का लाभ उठाया। दो स्त्रियां आगे बढ़ीं और क्रान्तिकारियों के हाथ से पिस्तौलें छीन लीं। तब भी किसी ने कुछ नहीं कहा। अब तो उन्होंने धन लूटने से भी रोका।

घर के बाहर भीड़ खड़ी हो चुकी थी। बिस्मिल ने परिस्थिति बिगड़ते देखते ही भागने का इशारा किया। बिना कुछ लिए सभी अपनी जान बचाकर दौड़े। पिस्तौलें भी वहीं छोड़ आए।

धन की कमी के कारण संगठन की सभी गतिविधियां बन्द थीं, धन का अभाव एक बड़ी समस्या बन चुकी थी। आज़ाद इसी चिन्ता



में कहीं घूम रहे थे। उसी समय एक व्यक्ति उधर से गुज़रा। दोनों का परिचय काफी पुराना था। वह देखते ही बोला, "कहो चन्द्रशेखर! क्या बात है? तुम कुछ चिन्तित लगते हो!"

"भाई! इस युग में धन के अभाव की ही चिन्ता है। इस समय मुझे धन की बहुत आवश्यकता है। धन कहां से आए? यही विचार कर रहा था।"

"अरे! तुम जैसा आदमी हो और धन की कमी हो? तुम चाहो, आज ही लाखों रुपया पा सकते हो।"

"मगर वह कैसे?"

"पास में जो गांव है, उसमें एक सेठ रहता है। उसके नौकरों से मेरी जान-पहचान है। घर के भीतर पहुंचने में कोई परेशानी नहीं होगी। क्यों न आज ही डाका डाला जाए?"

आज़ाद अवसर की ताक में तो थे ही। उन्होंने तुरन्त सहमति दे दी। उसी रात दल के कुछ व्यक्ति डाका डालने निकल पड़े। उन्होंने सेठ के घर पर डाका डाल दिया।

आज़ाद और उनके साथी धन जुटाने में लगे थे। आज़ाद ने तभी देखा—उसी घर की एक सुन्दर युवती को उनका साथी छेड़ रहा था। यह वही साथी था, जो उन्हें यहां लाया था। युवती लज्जा और डर से कांप रही थी।

आज़ाद का चरित्र बहुत उज्ज्वल था। आज़ाद अखण्ड ब्रह्मचारी थे। दुश्चरित्रता उन्हें फूटी आंख नहीं भाती थी। उनका हाथ अपनी पिस्तौल तक पहुंचा, दो बार आवाज़ें आईं, 'धांय, धांय!' दुश्चरित्र वहीं ढेर हो गया। आज़ाद ने युवती से क्षमा मांगी। एक भी पैसा लिए बिना ही लोग उल्टे पांव वापस लौट आए।

महन्तजी का धन

क्रान्ति की चिनगारी धीरे-धीरे आग पकड़ रही थी। अन्याय के शासन के विरोध में गुप-चुप तरीके से कुछ-न-कुछ प्रक्रियाएं चलती ही रहती

थीं। काशी में ही एक मुहल्ला था—लकशा, जहां एक मकान के बाहर बोर्ड लगा था—कल्याण आश्रम। इस मकान में रहने वालों को मुहल्ले का कोई व्यक्ति नहीं के बराबर जानता था। मुहल्ले वाले सोचा करते—कुछ आवारा लड़के ही इस मकान में रहते हैं। मकान का जो बाहरी कमरा था, उसमें खिड़की से झांकने पर कुछ दीखता। कमरे में तबला, हारमोनियम, सारंगी आदि वाद्य जहां-तहां रखे रहते। यह तो बाहरी कमरे का हाल था। भीतरी कमरे का दृश्य इसके बिल्कुल विपरीत था। बाहर का कमरा तो दिखावटी था। वास्तव में अन्दर का भाग कुछ क्रान्तिकारी युवकों का अड्डा बना हुआ था। एक दिन वहां दल की बैठक का प्रस्ताव रखा गया। मातृभूमि की सेवा के लिए धन की आवश्यकता थी। धन इकट्ठा करने वाली योजनाओं पर विचार किया जा रहा था। उनकी पहली योजना जो डाका डालने की थी, असफल सिद्ध हुई थी। अब धन की बहुत आवश्यकता थी। धन आए तो आए कहां से?

तभी एक साधु-वेशधारी रामकृष्ण खत्री ने एक उपाय सुझाया। वह बोले, "एक महन्त है जो गाज़ीपुर में रहता है। उसकी गद्दी बहुत बड़ी है। खूब धन है उसके पास। आजकल बीमार चल रहा है, बस मरने ही वाला लगता है। उसे एक योग्य शिष्य की आवश्यकता है, जो उसकी गद्दी सम्भाल सके। हममें से यदि कोई उसका शिष्य बन जाए तो धन हमारा होगा और हमारी तत्कालीन समस्या हल हो सकती है।"

साधुजी की बात सबको खूब पसन्द आई। काम थोड़ा जटिल भी था। आखिर एक योग्य शिष्य के गुणों वाला व्यक्ति जो चाहिए था। वहां चन्द्रशेखर को ही इस काम के लिए चुना गया। चन्द्रशेखर को यह काम जंचा तो नहीं, किन्तु विवश होकर गाज़ीपुर जाने के लिए राज़ी हो गए।

वे गाज़ीपुर में महन्त के पास पहुंचे और उनसे उनका शिष्य बन जाने की इच्छा प्रकट की। महन्त आज़ाद की सुन्दरता, गठीले शरीर और बात करने के ढंग से बहुत प्रभावित हुए। महन्त ने उन्हें अपना



मुख्य शिष्य बना दिया।

चन्द्रशेखर तो प्रकृति से ही आज़ाद थे। भला वे एक आश्रम में कितने दिन रह पाते! वह स्थान उनके लिए पिंजरा बन गया था।

भला एक स्वच्छन्द बिहार करने वाले पक्षी को सोने का पिंजरा कैसे भाता। किसी तरह आज़ाद को महीने विता पाए। फिर उनका एक-एक पल बड़ी कठिनाई में गुज़रने लगा। उनका मन् वहां बिल्कुल न लग रहा था। वे किसी तरह वहां से निकल भागना चाहते थे। एक दिन उन्होंने अपने साथियों को पत्र लिखा, "महन्तजी दिनों-दिन मोटे होते जा रहे हैं, अब तो खूब फल-दूध उड़ाने लगें हैं, फिलहाल उनके मरने का कोई आसार नहीं हैं। कृपा करके मुझे यहां से छुड़ा ले जाएं।"

पत्र काशी में साथी क्रान्तिकारियों के पास पहुंचा। मन्मथनाथ गुप्त और गोविन्दप्रकाशजी तुरन्त गाज़ीपुर के लिए रवाना हुए। महन्तजी के पास पहुंचे, दोनों ही साधु भेष में थे। भेंट होने पर और कुशल-क्षेम पूछने के बाद उन्होंने आश्रम के परिसर में घूमना शुरू कर दिया।

आश्रम एक मठ के रूप में था। देखकर मन्मथनाथ कुछ सोचकर बोले, "अगर यह जगह हमारे दल के पास आ जाए तो इसका एक गढ़ के रूप में उपयोग हो सकता है। यह जगह सुरक्षित तो है ही, साथ में धन की भी कोई समस्या न होगी।"

घूमते-घूमते आज़ाद भी उन्हें मिल गए। मन्मथनाथ और गोविन्दप्रकाशजी ने आज़ाद को बहुत समझाया और उन्हें वहां कुछ दिन और रुकने का अनुरोध किया। इस तरह समझा-बुझाकर स्वयं वे दोनों वहां से काशी चले आए।

साथियों के मनाने-बुझाने पर आज़ाद वहां रुक तो गए, लेकिन बाद में उनके मन में वही विचार आने लगे। सोचने लगे, "महन्त के तो मरने के आसार नहीं हैं। जब तक महन्त न मरे तब तक यहां बेकार पड़े रहना भी ठीक नहीं। मैं अनिश्चित काल के लिए यहां पर हाथों-पर-हाथ रखकर क्यों बैठा रहूं और देश सेवा के कार्य से वंचित रहूं?"

यह विचार उनके मन-मस्तिष्क में प्रभावी रहा। एक दिन वे बिना किसी को बताए चुपचाप मठ से भाग गए। इस तरह महन्त का धन कभी क्रान्तिकारियों के हाथ न आ पाया और उनकी इन आशाओं पर पूरी तरह पानी फिर गया।

आज़ाद एक संगठनकर्ता

ब्रिटिशराज के खिलाफ देशभर में आन्दोलन चल रहे थे। सभी लोग विरोध में एकजुट हो गए थे। जगह-जगह संगठन बनाए जाते। इस महासंग्राम के इतिहास में आज़ाद चिरस्मरणीय रहेंगे। उनके प्रयत्नों से कई ऐसे लोग इस संगठन के रूप में इस संग्राम में शामिल हुए, जो बहुत साहसी, वीर और काम के आदमी थे।

इनमें हर वर्ग से लोग आया करते। हर कार्यक्षेत्र के लोग देखने को मिलते। ऐसा ही एक दक्ष मिस्त्री भी था। वह दल के लिए हथियार बनाया करता था।

आज़ादी की इस कहानी में क्रान्तिकारियों की स्थिति बड़ी मार्मिक रही। कोई सन्देह की बात नहीं कि उनके द्वारा बड़ी-बड़ी यातनाएं सही गईं। क्रान्तिकारी इन कष्टों को हंसते-हसंते सह गए। उन्होंने प्राणों की आहुतियां खुशी-खुशी दे डालीं। यह सब विश्व के इतिहास में अन्यत्र मिल पाना दुर्लभ ही है।

पेट भरने और तन ढकने के लिए ये लोग मेहनत-मज़दूरी करते। इस कमाई में अपनी जीविका चलाना कठिन होता था। बड़ी कंजूसी से कुछ बचा पाते। इसी धन से कुछ शस्त्र-हथियार आदि खरीदते। शस्त्रों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना भी एक बड़ी समस्या थी। धन की अत्यधिक कमी के बावजूद उन्हें हथियारों को एक जगह से दूसरी जगह लाने-ले-जाने के लिए कभी-कभी पहले या दूसरे दर्जे तक का किराया खर्च करना पड़ता था। हथियारों का यह स्थानान्तरण एक काफी खतरनाक कार्य था, जिसे क्रान्तिकारी जान पर खेलकर पूरा करते थे।



कभी भूखे रहकर, कभी बिना शक्कर की चाय पीकर ही दिन गुज़ारते। ये अवसर बहुधा आते ही रहते थे। कई बार तो यहां तक होता कि ये महीनों शरीर पर लंगोट के सिवाय अन्य कोई नये वस्त्र तक न छू पाते।

एक बार आज़ाद किसी सोच में डूबे हुए बैठे थे। कमरे में एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। आते ही उसने दो-हज़ार रुपये आज़ाद के हाथों में पकड़ा दिए।

"यह रुपये कैसे हैं?" आज़ाद ने चौंककर पूछा।

"सुना है, आजकल आपके माता-पिता बहुत कष्ट में हैं। उन्हें खाने-पीने की चीज़ों तक का अभाव हो रहा है। आप यहां देश-सेवा में लगे हैं। हम लोगों ने ये रुपया मिलकर जमा किया है। आप इसे घर भेज दें।"

व्यक्ति की बातों से आज़ाद के चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ गई। उनके मन में उस समय रुपयों के प्रबन्ध की बात ही घूम रही थी। दल में धन का बहुत अभाव चल रहा था। सचमुच ये एक दैवी सहायता थी। उन्हें दल के कार्यों के लिए समय पर धन जो मिल गया था। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "आपकी इस सहायता की हमें बहुत आवश्यकता थी। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। यह रुपया हमारे दल के काम आएगा।"

"लेकिन ये तो आपके घर के लिए हैं। ये तो आपके माता-पिता के पास पहुंचने चाहिए।"

"केवल चन्द्रशेखर के माता-पिता ही तो कष्ट में नहीं हैं। दूसरे साथियों के घरवाले भी तो कष्ट में हैं। देश-सेवा में सबको बलिदान करना पड़ता है।"

व्यक्ति को आज़ाद की बात पर आश्चर्य हुआ। वह श्रद्धा से नतमस्तक हो वहां से चला गया।

आखिर दो हज़ार रुपये होते कितने हैं? एक दल के कार्य के लिए दो हज़ार कुछ भी नहीं थे। कुछ ही दिन बाद फिर धन की आवश्यकता

महसूस हुई। चार हज़ार रुपयों की सख्त आवश्यकता थी।

यों तो सभी लोग क्रान्तिकारियों से हमदर्दी रखते थे। एक दिन आज़ाद अपने एक मित्र के पास गए। वह मित्र लेन-देन का ही काम करता था। आज़ाद का वह बहुत आदर करता था। आज़ाद उसके पास पहुंचे। उससे आज़ाद कहने लगे, "भाई! क्या तुम्हारा लेन-देन का काम हमारे भी कुछ काम आ सकता है?"

"आखिर क्यों नहीं! बताओ, मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूं?"

"मुझे चार हज़ार रुपयों की सख्त ज़रूरत है।"

"लेकिन इन समय तो मेरे पास रुपये नहीं हैं। हां, मैं कुछ दिन बाद ज़रूर इसका प्रबन्ध कर सकता हूं।"

"नहीं, मुझे रुपये आज ही चाहिएं, जैसे भी हो, तुम रुपयों का प्रबन्ध कर दो। मैं तुम्हारा ऋण छह महीने के अन्दर-अन्दर चुका दूंगा।"

आज़ाद पर उसे पूरा विश्वास था। वह जानता था, यह आज़ादी का दीवाना, यह सब अपने लिए नहीं चाहता। उसकी जो भी आवश्यकता होती है, वह देश की सेवा के लिए ही होती है। वह अपने वायदे का पक्का है। जो बात मुंह से निकल गई, सो निकल गई। वह पत्थर पर बनी लकीर होती है।

वह तुरन्त उठा, आज़ाद को कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा, फिर कुछ देर में ही चार हज़ार रुपये उधार लाकर आज़ाद को सौंप दिए।

हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन से जुड़े लोग देश में चारों ओर क्रान्ति लाना चाहते थे। वे कभी-कभी गुप्त रूप से परचे भी छपवाते थे। जन-जन में चेतना के प्रसार के लिए परचे जगह-जगह बांटे जाते।

एक बार एक ऐसा परचा छापा गया, जिसमें जनता को ब्रिटिशराज के खिलाफ उकसाया गया था और क्रान्ति-दल के कार्यों के बारे में लिखा गया था। इसके माध्यम से जनता को बताया गया कि किस

तरह क्रान्तिकारी लोग स्वतन्त्रता के लिए कार्य कर रहे हैं। परचे बांटने के लिए कुछ ऐसा तय था, जिससे कि एक ही दिन में देश में सभी प्रमुख नगरों में एक साथ परचे बंटे। यह काम बड़े गुप्त तरीके से होना था। गुप्तचर विभाग द्वारा सरकार को सुराग लगने का डर था। उन्हें तनिक-सी भी हवा लगती तो गिरफ्तारियां आरम्भ हो जातीं और परचे ज़ब्त कर लिए जाते।

बनारस में परचा बांटने का काम आज़ाद को ही सौंपा गया। उन्होंने कार्य इतनी कुशलता से किया कि सभी चकित रह गए। स्कूलों, मन्दिरों, मस्जिद, दफ्तरों तथा अन्य सभी सार्वजनिक स्थलों पर परचे पहुंचे थे। जहां देखो, लोग परचे पढ़ते हुए दिखाई देते। आज़ाद का व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था कि कोई उनके कहे काम को टाल नहीं सकता था। परचा बांटने के काम में चपरासी, नौकर और अन्य सार्वजनिक कार्यकर्ता उनके साथ मिल गए थे। देश-हित के लिए उन सभी ने खुशी-खुशी अपना योगदान किया था।

दिल्ली के चांदनी चौक की घटना

आज सवेरे-सवेरे ही चन्द्रशेखर से मिलने उनके एक मित्र आ गए। आज़ाद पर उनका चार हज़ार रुपये का ऋण था। वह व्यक्ति कहने लगा, "द्रेखो चन्द्रशेखर! मुझे रुपया वापस चाहिए।"

"लेकिन मैंने तो छह महीने में वापस करने को कहा था। अभी तो केवल तीन ही महीने हुए हैं।"

"तुम सही कहते हो, किन्तु मुझे जिसने ये रुपये दिए थे, वह नहीं मानता, वह अपना रुपया मांग रहा है। मैं अपने-आप ही उसका प्रबन्ध कर देता, लेकिन इस समय मेरे पास प्रबन्ध नहीं हो पा रहा। अब तुम्हीं से मांगने आया हूं।"

"उस रुपये वाले से कहो, हम कुछ समय बाद उसे उसका उधार लौटा देंगे। वह जितना भी ब्याज लगाएगा, हम सब चुका देंगे।"

"मैं यह बात तो कई बार उससे कह चुका हूं। वह मानता नहीं,

कहता है कि उसे सख्त ज़रूरत है।''

''ठीक है! तुम्हें शाम को रुपये मिल जाएंगे।'' यह कहकर आज़ाद निकल गए।

कोई दो बजे का वक्त रहा होगा। दिल्ली के प्रसिद्ध बाज़ार चांदनी चौक की बात है। बाज़ार में सामान्य चहल-पहल थी। सभी अपने-अपने काम-धन्धों में व्यस्त थे। कोतवाली से थोड़ा आगे एक जौहरी की दुकान में एक नवयुवक प्रविष्ट हुआ। नवयुवक ने दो-एक चीज़ों को देखा, कुछ मोलभाव भी किया, फिर उसने हाथ से बाहर की ओर इशारा किया। आठ-दस युवक दुकान में आ घुसे। सभी के हाथ में पिस्तौलें थीं। नवयुवक ने जौहरी ही कनपटी पर पिस्तौल तान दी। देखते-ही-देखते उन्होंने चौदह हज़ार रुपया लूट लिया। फिर सभी चलते बने। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उन्हें आगे बढ़कर रोक सके।

शाम को चन्द्रशेखर अपने मित्र को चार हज़ार रुपये वापस देने पहुंच गए। मित्र बड़ा मुंह बनाते हुए कहने लगा, ''रुपया हासिल करने का ये तो कोई तरीका नहीं है।''

आज़ाद के चेहरे पर मुस्कराहट बिखर गई, कहने लगे—''तुम्हारी बात सही तो है, लेकिन तुमने कभी सोचा है कि पूंजीपति गरीबों का खून चूस-चूसकर धन कमाते हैं और फिर ये रुपया उनके घर पर पड़ा सड़ता रहता है।''

''लेकिन तुम्हें डाका डालने में थोड़ी हिचक तो होनी चाहिए थी। तुम्हें डाका नहीं डालना चाहिए था।''

''मांगने पर अगर कोई न दे, और न हम डाका डालें तो धन आए कहां से? ये धन गरीबों का है, सारे देश का है इसका उपयोग देश-हित के कार्यों में होना चाहिए।''

मित्र आज़ाद की बातों से निरुत्तर हो चुका था। उसके पास पूछने को अब कुछ नहीं बचा था। आज़ाद बहुत-से अच्छे गुणों के धनी थे। उनका हाथ गोली चलाने में पूर्णतः कुशल था। निशाना चूक जाने जैसे कोई बात ही नहीं होती। पिस्तौल वे हमेशा पास रखा करते।



एक बार चन्द्रशेखर अन्य क्रान्तिकारियों के साथ एक जंगल से गुज़र रहे थे। सभी लोग आपस में बातचीत करते आगे बढ़ रहे थे। तभी किसी एक ने कहा, "भैया आज़ाद! जरा आपकी निशानेबाजी परखी जाए। हम लोगों का थोड़ा मनोरंजन भी हो जाएगा।"

आज़ाद रुके, फिर थोड़ा मुस्कराए और बोले, "ठीक है, बताओ कहां निशाना लगाऊं?"

"यह हम आप पर ही छोड़ते हैं, आप जहां ठीक समझें, हमें तो देखने से मतलब है।"

आज़ाद ने इधर-उधर नजर डाली। हाथ से इशारा करते हुए बोले, "वह देखो! यहां से लगभग तीस गज़ दूर वह जो पेड़ है, उसका जो छोटा-सा पत्ता लटक रहा है, उसे ध्यान से देखना, मैं उसी पर निशाना लगाता हूं।"

सभी की निगाहें पेड़ के उस पत्ते पर थीं। धांय की आवाज़ हुई, पत्ता हिला तक नहीं, सभी के मुंह से निकला, "निशाना चूक गया।"

पिस्तौल से दूसरी गोली छूटी। पत्ता वहीं लटकता रहा। तीसरी, चौथी फिर पांचवीं गोली पत्ते की तरफ बढ़ी। पत्ता अभी भी उसी तरह लटकता दिखाई दिया।

यह देखकर सभी को बहुत आश्चर्य हुआ। पांच में से कोई भी गोली पत्ते को न छू पाई, स्वयं आज़ाद भी चौंककर बोले, "आज तक कभी मेरा निशाना खाली नहीं गया। आज जाने क्या हुआ? पत्ते पर एक भी गोली नहीं लगी।"

सभी पेड़ के पास आए। सामने से पत्ते की ओर देखा तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। पत्ते पर पांचों गोलियों ने पांच अलग-अलग छेद बना डाले थे।

मां के पास

पिता को गुज़रे दो साल हो चुके थे। मां जगरानी कानपुर में एक घर में अकेली रह रही थीं। बेटा आज़ाद अधिकतर समय बाहर ही

गुज़ारता। कभी चार दिन तो कभी आठ दिन बाद घर आना होता। घर आता भी तो एक रात से ज्यादा न टिकता। कभी तो मां जगरानी हफ्तों तक चन्द्रशेखर का मुंह देखने के लिए तरस जातीं। इस बार आज़ाद को गए दस-बारह दिन हो चुके थे। घर पर मां उदास थीं, चिन्ता में बैठी सोच रही थीं, "बेटा ब्रिटिश सरकार के विरोध में लड़ रहा है, देश की सेवा में लगा हुआ है, लेकिन अंग्रेज़ बहुत निर्दयी हैं। वे विरोधियों को मार डालते हैं। भगवान मेरे बेटे की रक्षा करना।"

मां जगरानी यह सब सोच ही रही थीं कि चन्द्रशेखर दो साथियों के साथ आ पहुंचे। बोले, "मां, हमें बहुत भूख लगी है, खाने के लिए कुछ दो।"

आज़ाद को देखते ही मां का रोम-रोम खिल उठा। चन्द्रशेखर से बोलीं, "बेटा! मैं अभी खाना बनाती हूं, तुम तब तक पेड़े खाओ। तुझे पेड़े बहुत अच्छे लगते हैं न, मैंने तेरे लिए पहले से ही पेड़े लाकर रखे थे। रोज़ तेरे ही बारे में सोचती और तेरी राह देखती हूं। भगवान का शुक्र है कि तू ठीक-ठाक घर आ गया। ले अपनी साथियों के साथ ये पेड़े खा ले।"

तीनों साथियों ने पेड़े खाए और पानी पीकर सो गए। मां इधर खाना बना रही थीं। वह आज खाने में कई चीज़ें बना रही थीं। उन्होंने तरह-तरह की सब्जी, पूड़ी, हलुआ वगैरह चीज़ें बनाई थीं। शायद सोच रही थीं 'न जाने चन्द्रशेखर ने कब से खाना नहीं खाया है।'

मां ने जगाया तो तीनों उठ बैंठे। तीनों ने स्नान किया और खाना खाया, फिर चलने को तैयार होने लगे। मानो वे घर में नहीं, बल्कि किसी सराय में आए थे और अब विश्राम करके जा रहे थे।

मां यह सब चुपचाप नहीं देख सकीं। उनका गला भर आया था। वे बोलीं, "चन्द्रशेखर! क्या तू एक दिन भी घर पर नहीं रुकेगा?"

"नहीं मां! मैं आज नहीं रुक सकता, मुझे बहुत-से ज़रूरी काम करने हैं।"

"काम! बेटा, काम तो लगे ही रहते हैं, क्या तू अपनी मां के लिए

एक दिन रुक नहीं सकता? तुझे मेरी ममता की तनिक भी परवाह नहीं?"

"मां तेरा बेटा यह बात समझता है! ममता के लिए ही तो यह सब कर रहा हूं। मां दुःख उठाती रहे और बेटा देखता रहे, ऐसे पुत्र को तो धिक्कार है।"

मां चन्द्रशेखर की बात को समझ न पाई। सोचने लगी, 'यह मुझे कौन-सी खुशी दे रहा है?' मां बोली, "मेरे लाल! तू नहीं समझता कि मेरा सुख तो तभी है जब तू मेरी आंखों के सामने रहे।"

"मां तुम्हारा यह सुख झूठा है। भारत मां, जो तैंतीस करोड़ पुत्रों की मां है, आज गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ी पड़ी है। उसके पुत्र निकम्मे हो रहे हैं। वह तो मेरी, तुम्हारी, इस देश के हर वासी की मां है। मुझसे उसका दुःख नहीं देखा जाता।"

"बेटा! तू कैसे उसके दुःख दूर कर सकता है?"

"इस देश को गुलामी से आज़ाद कराकर।"

चन्द्रशेखर की बात सुनकर मां का हृदय कांप उठा। वे आतंकित शब्दों में बोली, "बेटे! इस तरह अंग्रेजों का विरोध न करो। वे बहुत निर्दयी लोग हैं। कहीं ऐसा न हो, वे तेरे प्रति कोई अनिष्ट ठान लें।"

"मां! तुम्हारी बात सुनकर आश्चर्य होता है। तुम चन्द्रशेखर की मां होकर ऐसी बातें करती हो? जब देश में तैंतीस करोड़ चन्द्रशेखर हों तो अंग्रेज़ एक चन्द्रशेखर का अनिष्ट कर क्या पा लेंगे! यदि चन्द्रशेखर मारा जाता है तो वह दूसरों की प्रेरणा बनेगा, सब एक हो उठेंगे। देश में क्रान्ति की लहर दौड़ जाएगी, हर तरफ अंग्रेज़ों की पराजय होगी और ब्रिटिशराज का तख़्ता पलट जाएगा।"

"बेटा! तुम्हारी अभी उम्र ही क्या है जो तुम इतना बड़ा काम कर सको! देश के बड़े-बड़े गणनायक, महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय, इन्होंने पहले बहुत कुछ सीखा और तब ही देश सेवा में जुटे। तुम्हें पहले शिक्षा-प्राप्त करनी चाहिए, उसके बाद मैं तुम्हें देश-सेवा के लिए कुछ नहीं कहूंगी।"



''मां! तू देखती नहीं, आज की शिक्षा परतन्त्रता को बढ़ावा देने वाली दी जाती है। यह समय है, जो हमें हमारे कर्त्तव्य के लिए पुकारता है। आज पूरा देश गुलामी की ज़ंजीरें तोड़ने को जाग खड़ा हुआ है।''

''लेकिन तुम मुट्ठीभर नौजवान कैसे इस अंग्रेज़ी हुकूमत से टक्कर लोगे? वे लोग बहुत अधिक हैं, फिर उनके पास शासन शक्ति भी तो है।''

''एक चिनगारी बड़ी-से-बड़ी बाड़वाग्नि को भड़का सकती है। बूंद-बूंद मिलकर एक सागर बना देती है। माना हम लोग मुट्ठीभर ही हैं, परन्तु एक दिन सभी हमारे साथ होंगे। सभी एक साथ होकर ब्रिटिशराज की धज्जियां उड़ा सकने में कम नहीं होंगे।''

''बेटे! तेरी बड़ी-बड़ी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं, लेकिन इतना तो मैं अवश्य चाहूंगी कि देश से ब्रिटिशराज का सफाया जल्दी-से-जल्दी हो और देशवासियों का अपना शासन स्थापित हो।''

''यही तो हम सभी का स्वप्न है। इस सबके लिए देश की माताओं के विशेष त्याग की बहुत आवश्यकता होगी। शिवाजी की माता जीजाबाई इतनी वीर न होतीं तो क्या महाराष्ट्र शिवाजी द्वारा स्वतन्त्र हो पाता! मैं चाहता हूं, तुम भी मुझे माता जीजाबाई की तरह आशीर्वाद दो कि मैं अपने लक्ष्य में कामयाब हो सकूं।''

''और कहीं सरकार ने तुझे जेल में डाल दिया तो क्या होगा?''

''बुरे कर्म कर जेल जाना तो बुरा ही कहलाता है। देश की सेवा में जेल जाना किसी तीर्थाटन से कम नहीं। दुष्टों के नाशक भगवान कृष्ण तो जेल में ही जन्मे थे। अंग्रेज़ों के अत्याचारों को अब और अधिक नहीं सहा जाएगा। यह साम्राज्यवादी तन्त्र शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।''

''अच्छी बात है, तुझे जैसा ठीक लगे, मेरी तो यही कामना है कि तू जुग-जुग जिए, तेरा बाल भी बांका न होने पाए। भगवान तुम्हारे लक्ष्य की प्राप्ति में हमेशा तुम्हारे साथ रहें, मेरा आशीर्वाद हमेशा तेरे साथ है।''

"मां, तेरा आशीर्वाद तो हमेशा मेरे साथ ही रहेगा। मैंने तेरी कोख से जन्म लिया है, तेरे दूध को लजाने वाली कोई बात नहीं करूंगा। संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसका नाश न हो। एक दिन न तू रहेगी, न मैं रहूंगा, लेकिन तेरा नाम रहेगा। लोग मेरे नाम से तुझे जानेंगे कि तू मुझ जैसे वीर की जननी थी।"

"जाओ मेरे लाल! मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ न्योछावर कर दो।"

तीनों मां के चरणों में झुके और अपने उद्देश्य के लिए निकल पड़े।

काकोरी काण्ड

सन् 1925 के अगस्त माह की नौवीं तारीख थी।

बालामऊ जंक्शन पर मुरादाबाद की ओर से आने वाली बी-डाउन लखनऊ पैसेंजर ट्रेन आकर खड़ी हुई। जंक्शन से तीन आदमी दूसरे दर्जे में सवार हुए और सात लोग तीसरे दर्जे में जा बैठे। इंजन ने सीटी दी और ट्रेन चल पड़ी।

ज्यों ही बी-डाउन लखनऊ पैसेंजर ट्रेन काकोरी स्टेशन के सामने पहुंची, अचानक किसी ने ज़ंजीर खींच दी। गाड़ी रुक गई। बालामऊ से सवार हुए सभी दस-के-दस आदमी बाहर आ गए। दसों को हाथों में भरी हुई पिस्तौलें थीं। इंजन के ड्राइवर और फायरमैन को उनमें से दो लोग जाकर बांध चुके थे। एक आदमी ने गार्ड की छाती पर पिस्तौल तान दी। गार्ड को फिर चुपचाप खड़े रहने का आदेश दिया गया। चार लोगों ने गाड़ी के दोनों ओर घूमकर यात्रियों से कहा, "कोई हिलने-डुलने की कोशिश न करे, नहीं तो गोली मार दी जाएगी। हम यात्रियों को कुछ नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते, हम यहां से सरकारी खज़ाना उठाने आए हैं।"

यात्री चुपचाप डिब्बों में बैठे रहे। ट्रेन से सरकारी खज़ाने के सन्दूक बाहर निकाले गए। हथौड़ों से सन्दूकों के ताले तोड़े गए। इसी

बीच पास की पटरी से पंजाब मेल आती दिखाई दी। सभी ने सावधान होकर हथियार नीचे कर लिए। धड़धड़ाती हुई ट्रेन गुज़र चुकी थी। सभी शान्ति से खड़े रहे। फिर एक क्षण बाद सन्दूकों के ताले हटने पर सब रुपया निकाल लिया गया। दल लखनऊ की ओर जाने वाले चक्करदार जंगली रास्ते पर चल पड़ा।

सरकारी खज़ाने को लूटने वाले ये लोग कोई और न होकर, रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफाक उल्ला खां और चन्द्रशेखर आज़ाद थे। बाकी सभी लोगों में मन्मथनाथ गुप्त, बनवारीलाल, राजेंद्र लाहिड़ी, मुकुन्दीलाल, शचेन्द्रनाथ बख्शी, मुरारीलाल और केशव चक्रवर्ती थे। यह योजना के अनुसार हुआ था।

दल का काम चलाने के लिए उन्हें धन की सख्त आवश्यकता थी। आखिर कब तक वे धन के अभाव में कष्ट उठाकर देश की सेवा कर पाते! आर्थिक-कष्टों से वे घबरा उठे थे। सबने एकमत होकर सरकारी खज़ाने को लूटने की योजना बनाई थी।

उन्होंने जो खज़ाना लूटा था, वह रेलवे के बहुत-से स्टेशनों की आय बनती थी। यह आय जमा होकर लखनऊ आया करती थी। बालामऊ से चढ़कर उन्होंने इसी आय को लूट लिया।

यह लूट ब्रिटिश सरकार के खिलाफ एक खुली चुनौती थी। सरकार का गुप्तचर विभाग दिन-रात सक्रिय हो गया। पूरी शक्ति से क्रान्तिकारियों की खोज शुरू हो गई। विशेष रूप से 25 अगस्त को पुलिस ने उत्तर प्रदेश के उन सभी नगरों पर छापे मारे, जहां उन्हें थोड़ा-सा भी सन्देह लग रहा था। पुलिस का जाल जगह-जगह फैला दिया गया। अपराधियों को पकड़ने की इस तेज प्रक्रिया में पुलिस ने आज़ाद और उनके कुछ साथियों को छोड़कर सभी षड्यन्त्रकारियों को गिरफ्तार कर लिया था। पकड़े जाने वालों में कुछ कच्ची मिट्टी के थे। पुलिस वालों की मार की घबराहट के कारण, कुछ ने दल के कई गुप्त स्थानों का पता बता दिया। बहुत-से अड्डों से पुलिस ने क्रान्तिकारियों को खोज निकाला। सैंकड़ों क्रान्तिकारी जेलों में ठूंस दिए गए।

न्यायालयों में क्रान्तिकारियों पर मुकदमे चलाए जाने लगे। कई वकीलों ने क्रान्तिकारी वीरों के मुकदमों की पैरवी बिना फीस लिए की, लेकिन सब कुछ व्यर्थ हुआ। जिन्होंने क्षमा मांग ली, वे छोड़ दिए गए और अन्य वीरों को कालापानी की सज़ा दी गई। अशफाक उल्ला खां, रामप्रसाद बिस्मिल और उनके कुछ साथियों को फांसी की सज़ा दी गई। हर तरफ खलबली-सी मच गई।

'बिस्मिल' बड़े अच्छे शायर थे। जोश और देशभक्ति उनकी शायरी में देखने को मिलती थी। 'होश में आ जाओ बुलबुलों, चमन खतरे में है' उनका देशवासियों के लिए संकेत था।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' के लिए फांसी का फन्दा तैयार कर दिया गया। सभी लोग—जेलर, सन्तरी, डॉक्टर, न्यायाधीश आदि खड़े थे। जिन क्रान्तिकारियों को फांसी दी जानी थी, उनके चेहरों पर मौत के भय का एक भी निशान न था। सभी मौत की उस घड़ी में भी मुस्करा रहे थे।

क्रान्तिकारियों को तख्ते के सामने लाया गया। रामप्रसाद बिस्मिल सबसे पहले तख्ते पर चढ़े। जल्लाद ने उनके गले में फांसी का फन्दा डाल दिया। 'बिस्मिल' ने अपना अन्तिम सिंह कहकर सुनाया जो उर्दू साहित्य और क्रान्ति के इतिहास में हमेशा याद रखा जाएगा—

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का, यही बाकी निशां होगा।।

'बिस्मिल' के पैरों के नीचे से तख्ता खिसका, फांसी का फन्दा कसता चला गया। वे झूलकर शहीद हो गए।

इसी तरह अशफाक उल्ला खां और दो साथियों को भी फांसी के फन्दे पर लटका दिया गया। मातृभूमि की बलिवेदी पर चार पुष्प चढ़ा दिए गए।

आज़ाद चाहते थे कि कैसे भी हो, अपने प्रमुख साथियों को जेल से निकाल लिया जाए। रामप्रसाद बिस्मिल के बाद बना दल का नेता बड़ा आलसी और कायर था। काम को टालते-टालते वे लोग कुछ न

कर पाए। इस प्रकार आज़ाद की बात मन में ही रह गई और आज उन लोगों को फांसी भी हो गई।

'चन्द्रशेखर आज़ाद को पकड़वाने में मदद करने वाले को बहुत-सा इनाम दिया जाएगा।'

पुलिस की यह घोषणा हर तरफ फैल गई। आज़ाद तो इन बातों से अब ऊब चुके थे। इसी बीच आज़ाद झांसी के निकट एक गांव ढिकनपुरा के जंगलों में रहने लगे। उनका सम्पर्क झांसी में क्रान्तिकारियों से भी हो गया। उन्होंने ओरछा के जंगलों में अपने दल के सदस्यों को हथियार चलाना सिखाना शुरू कर दिया।

आज़ाद जल्दी ही जंगल के जीवन से ऊब गए। उन्होंने ढ़िगरपुर में ही एक ब्रह्मचारी के वेश में एक झोंपड़ी में रहना शुरू कर दिया।

आज़ाद हनुमान भक्त-ब्रह्मचारी के वेश में रहा करते थे। गांव वाले उनका बहुत सम्मान करते थे। झोंपड़ी पर एक मन्दिर-सा बन गया था। उन्हें एक पहुंचा हुआ साधु समझकर रोज़ लोगों की भीड़ आने लगी।

आज़ाद ने हाथ जोड़कर कहा, "भाइयो और माताओ! मैं कोई बड़ा साधु भी नहीं हूं, आप बेकार यहां आकर समय नष्ट न करें।"

आज़ाद उन आने वाले लोगों से तंग आ गया। जितना मना किया जाता लोग उतना अधिक आने लगे। आज़ाद के पास एक दिन गांव के ज़मींदार भी पहुंचे थे। आज़ाद ने उनके प्रार्थना की, "मैं एक ब्रह्मचारी हूं, मेरा नाम हरिशंकर है। कृपा करके मुझे रहने के लिए कोई जगह दे दीजिए। मैं एकान्त में रहना चाहता हूं, जहां लोग व्यर्थ न आ पाएं।"

ज़मींदार आज़ाद की बातों से बहुत प्रभावित हुए। ज़मींदार ने अपने ही घर में आज़ाद के रहने की व्यवस्था कर दी। जमींदार का आज़ाद पर काफी विश्वास बढ़ चुका था। उन्होंने अपनी बन्दूकें, पिस्तौलें और कारतूस उनके सुपुर्द कर दिए। अब उन्होंने अपने साथियों से फिर सम्पर्क साधकर वहां के जंगलों में ही निशानेबाज़ी के लिए अभ्यास शुरू कर दिया। जमींदार भी उनके साथ शिकार पर जाया

करते। उनके साथ निशानेबाजी में भी रुचि लेते।

ज़मींदार से आज्ञा ले आज़ाद एक दिन ढ़िमरपुरा छोड़कर झांसी रहने के लिए चले गए। आज़ाद एक मोटर कम्पनी में काम करने लगे। वहीं उन्होंने अच्छी ड्राइवरी भी सीख ली। इस समय कोई शक नहीं कर सकता था कि यह हरिशंकर ही आज़ाद है।

उत्तर भारत में उन्हीं दिनों आन्दोलन ज़ोर पकड़ चुका था। उत्तर प्रदेश की पुलिस आज़ाद को पकड़ने के लिए पूरी शक्ति लगा रही थी। इसलिए आज़ाद वहां से मुम्बई को निकल गए। मुम्बई की सड़कों पर भटकते-भटकते कई दिन बीत गए। जीवन-यापन का कोई सहारा न था। अन्त में विवश होकर वे बन्दरगाह पर कुलियों के साथ भरती हो गए। वहां बोझा ढोकर जीविका कमाते। रात को जहाज़ के गोदाम में ही कहीं पड़कर सो जाते।

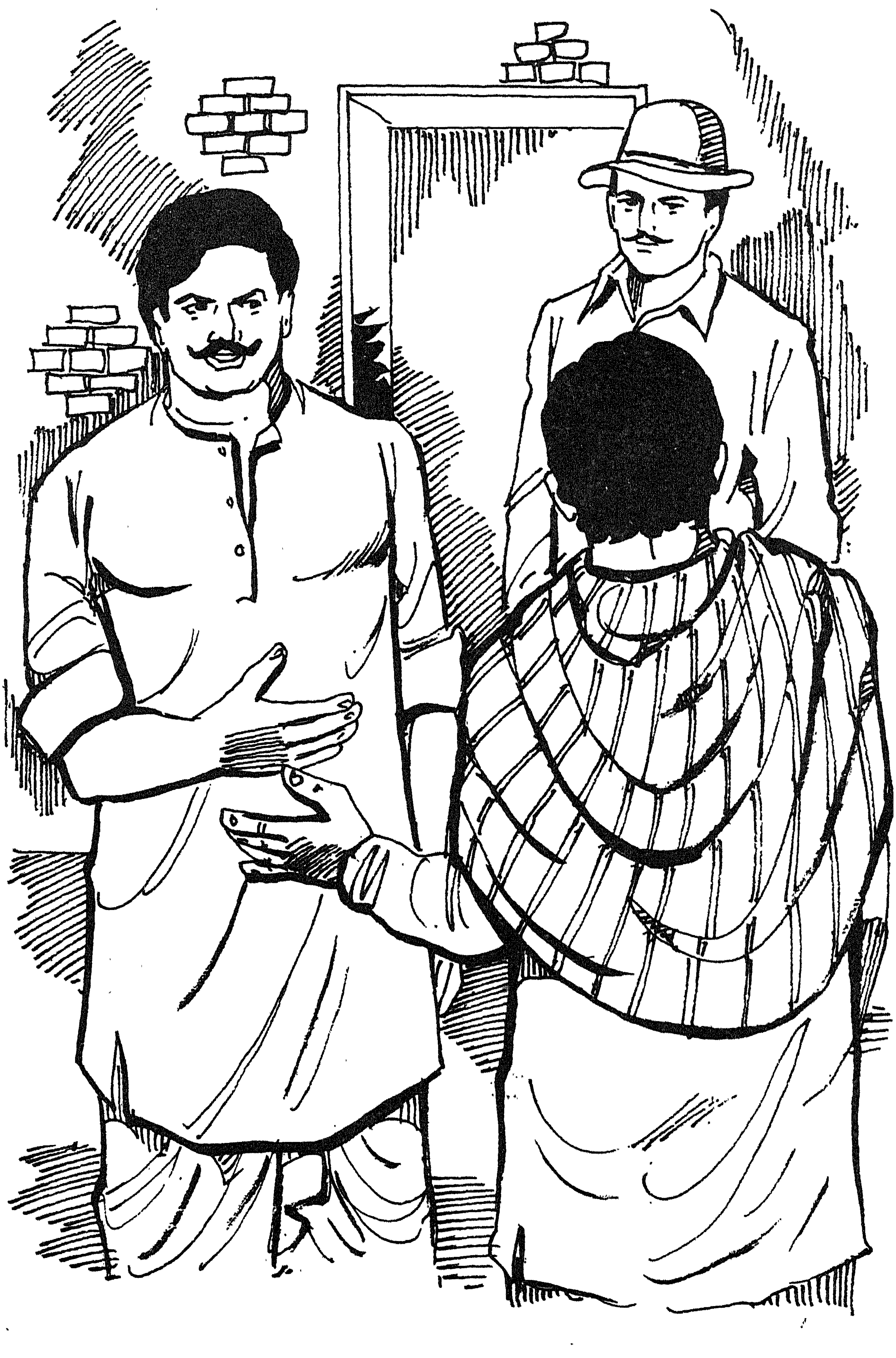
उधर उत्तर प्रदेश में अपने चार साथियों के फांसी पर चढ़ाए जाने की खबर से उनका कलेजा थर्रा गया। कुछ दिनों तक तो वे कुछ भी न कर पाए।

भारत की क्रान्ति के इतिहास में विनायक दामोदर सावरकर एक सबसे मुख्य नाम है। उनके काल को इतिहास में दामोदर युग कहना ही उचित होगा। वीर सावरकर के नाम से अंग्रेज़ कांप जाते थे। कई बार वे कालपानी की सजा पा चुके थे, फिर भी अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा देते। उन्हीं के अथक प्रयासों से क्रान्ति को बल मिला। हज़ारों लोग इस क्रान्ति की आग में कूद गए। सावरकर सभी क्रान्तिकारियों के गुरु माने जाते थे।

आज़ाद वहां से कानपुर चले आए। वहां से वीर सावरकर के पास पहुंचकर उन्हें सारा हाल सुनाया।

''इतनी छोटी-सी बात से तुम मन विचलित कर रहे हो?'' सावरकरजी ने आज़ाद पर एक दृष्टि डाली।

''आप इसे छोटी-सी बात कहते हैं? रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफाक उल्ला खां जैसे नेताओं और प्रमुख कार्यकताओं का अभाव कैसे पूरा हो



सकता है?''

''यह ठीक है। सच्चे सहयोगी और ऐसे कार्यकर्ता बड़ी कठिनाई से मिल पाते हैं। मगर देश-सेवा में सब सहना पड़ता है, बड़े-बड़े बलिदान करने पड़ते हैं। घबराकर कोई लाभ नहीं होता। ऐसे लोग तो बनाए जाते हैं, उत्पन्न नहीं किए जाते। क्या तुम 'बिस्मिल' से कम हो? दृढ़ता और लगन से कार्य करने वाला व्यक्ति सब कुछ कर सकता है।''

''फिर तो अब नए सिरे से संगठन खड़ा करना होगा। इस कार्य में तो वर्षों का समय लग जाएगा।''

''तो क्या फर्क पड़ता है! ये संघर्ष कोई खेल तो नहीं है। स्वतन्त्रता का संघर्ष पीढ़ी-दर-पीढ़ी भी चल सकता है। अंग्रेज़ों के विरोध में सन् 1857 से ये संघर्ष होता आ रहा है। क्या पता, हम तुम भी स्वतन्त्रता का मुख न देख सकें। हमारी आने वाली पीढ़ी स्वतन्त्रता को देखे। कर्म करना तो हमारा कर्त्तव्य है। हमें फल की चिन्ता क्यों हो? यह सब तो विधाता के ही हाथ में है।''

एक लम्बा-सा, गोरा-चिट्टा नौजवान उसी बीच वहां पहुंचा। मुख पर छोटी-छोटी तनी हुई मूंछें थीं। कमीज़ के कॉलर खुले थे। सिर पर फैल्ट हैट था। इस लिबास में उसका व्यक्तित्व काफी निखर रहा था। नौजवान ने सावरकरजी का अभिवादन किया।

''अरे भगतसिंह! तुम तो ठीक अवसर पर पहुंचे।''

''गुरुदेव! मेरे योग्य कोई सेवा?''

''सेवा तो कुछ नहीं, इनसे मिलो, ये चन्द्रशेखर आज़ाद हैं।'' यह कहकर उन्होंने भगतसिंह और आज़ाद का परिचय कराया। वे नाम से एक-दूसरे को तो जानते ही थे। आज गले भी मिल चुके थे।

''चन्द्रशेखर, रामप्रसाद 'बिस्मिल' को फांसी लग जाने से निराश-सा हो रहा है, अब तुम दोनों मिलकर दल के कार्य करो।'' सावरकरजी ने कहा।

''जो आपकी आज्ञा।'' भगतसिंह ने उत्तर में कहा। उसके बाद भविष्य में होने वाली योजनाओं पर विचार-विमर्श किए गए। आज़ाद

को वीर सावरकर और भगतसिंह की बातों से प्रोत्साहन मिला। भगतसिंह और आज़ाद वहां से चल दिए।

मां की ममता

माता जगरानीदेवी बेटे की राह तकती हुई सूखकर पंजर हो रही थीं। वह घर के कोने में पड़ी सोच रही थीं, 'सूर्य उदय होता है और अस्त हो जाता है। इसी तरह रात और दिन बीतते रहते हैं। इस चक्र को चलते हुए दो साल बीत चुके हैं। मेरा चन्द्रशेखर अभी तक नहीं आया। मैंने उसके लिए पेड़े लाकर रखे थे। सब सूखकर खराब हो जाते हैं, फिर दुबारा लाती हूं। वह फिर भी घर नहीं आता, न जाने कब और कहां से भूखा-प्यासा आ जाए। रामू हलवाई के पेड़े उसे अब कहां मिल पाते होंगे? खाने को कुछ मिलता होगा भी या नहीं।

"सुना है उसने और उसके साथियों ने सरकार का खज़ाना लूटा था। उनमें कुछ को कालापानी की सज़ा हो गई है और चार को फां....सी....! हे राम, हे भगवान, मेरे चन्द्रशेखर को बचाना। वह अभी नासमझ है। कह रहा था—मां! भारत माता तो सबकी माता है। उसकी सेवा में जान चली भी जाए तो चिन्ता की कोई बात नहीं। कितना भोला है। सबकी माता के लिए तो वह जान दे देगा, लेकिन अपनी माता की उसे कोई चिन्ता नहीं।

"वह नहीं जानता, जब वह देश-सेवा की बातें करता है, बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें करता है, तब मैं तो केवल उसकी खुशी के लिए ही कलेजे पर पत्थर रख, उसकी हां-में-हां मिलाती हूं।

"उसकी ज़िद्द को मैं समझती हूं, उसे समझाना हमेशा बेकार होता है। उसकी खुशी, मेरी खुशी। वह देश-सेवा करे, जी भरकर करे, पर मुझे अपना प्यारा मुख भी दिखा जाया करे।

"उसे सरकार से विरोध नहीं बढ़ाना चाहिए। देश सेवा करने के दूसरे भी तो तरीके हैं। वह गांधीजी का शिष्य बन जाए। इस मार्ग की अपेक्षा उनका मार्ग कहीं सरल है। इस तरह कम-से-कम प्राण गंवाने

का तो भय नहीं है।

''लेकिन किसी से दबकर काम करना भी तो उसने नहीं सीखा है। शरीर के कष्टों को वह कष्ट नहीं मानता। बेंतों की सज़ा के बारे में हमें गांव वालों ने बताया। तब उसके पिताजी काशी गए और चन्द्रशेखर से मिलकर समझाया, फिर भी वह नहीं माना।

'हम दोनों के मन में एक इच्छा थी। चन्द्रशेखर विवाह करे, घर में एक अच्छी-सी बहू आए। पोते का मुंह देखें। उसने तो हमारी सब इच्छाओं पर पानी फेर दिया।'

''मैं सब याद करके जब रोती तो उसके पिता मुझे समझाते हुए कहते थे, ''रोने की कोई बात ही नहीं है। तुमने सिंह को जन्म दिया है। तेरे लाडले की आज सारा देश प्रशंसा करता है। उसकी प्रशंसा सुनकर मेरा सिर गर्व से ऊंचा होता है।

''मैं जानती हूं, उनकी वे बातें मुझे समझाने के लिए होती थीं। सच तो यह था कि वे अन्दर-ही-अन्दर घुल रहे थे। शायद इसी कारण जल्दी ही संसार से विदा हो गए। मैं अब न जाने क्या देखने को जी रही हूं?''

''मां, मां! मैं आ गया मां!!''

''अरे! ये तो मेरे चन्द्रशेखर की आवाज है।''

मां ने देखा चन्द्रशेखर आंगन में खड़ा मुस्करा रहा था। आगे बढ़कर मां के चरण छुए।

''बेटा! तू इतने दिन कहां रहा? तुझे मेरी याद क्या बिल्कुल नहीं आई? मैं तो मुझे याद करते-करते मर मिटी।''

''मां, मैं कभी भी रहूं, तेरे आशीर्वाद से कुशल ही रहूंगा।''

''यह सब तो ठीक है, पर तूने इतने दिनों तक मां की कोई खबर नहीं ली?''

''अच्छा ये बातें बाद में होती रहेंगी। बड़ी जोरों की भूख लगी है, कुछ खाने को दो, मां।''

''तेरे लिए मैंने कई बार पेड़े लाकर रखे। अभी कल भी हलवाई से पेड़े लाई थी। वह रखे हैं, मैं अभी लाती हूं।''

चन्द्रशेखर मां के लाए पेड़े खाने लगे। सोच रहे थे, "संसार में ममता की कोई समानता नहीं। मैं माता-पिता को कभी सुख न दे पाया। देश-सेवा का व्रत है ही ऐसा। उसके लिए सब कुछ छोड़ना जो पड़ता है। गुरुगोविन्दसिंह ने अपने चारों पुत्रों की बलि दे दी। महाराणा प्रताप जंगलों की खाक छानते फिरे। शिवाजी इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करने पर भी कभी चैन से नहीं रह सके। लोकमान्य तिलक, वीर सावरकर, लाला हरदयाल ने अंग्रेज़ों के कई अत्याचार सहे। खुदीराम बोस को सत्रह वर्ष की आयु में फांसी लग गई। देश-सेवा सबसे बड़ा धर्म है। भारत माता सबकी माता हैं। इसका कण-कण तीर्थों के समान है।"

"पण्डित जी, पण्डित जी!" बाहर कोई आया था।

"अरे! आओ भाई भगतसिंह, अन्दर आ जाओ।"

भगतसिंह अन्दर आ गए। उनके साथ राजगुरु भी खड़े थे। कहने लगे, "आपके आने का पुलिस को सन्देह हो गया है, इसलिए यहां से शीघ्र चलिए।"

आज़ाद का हाथ तुरन्त पिस्तौल पर गया और बोले, "डरने की कोई बात नहीं, आने दो उन्हें।"

आज़ाद हर समय पिस्तौल भरी ही रखते थे। पिस्तौल पर आज़ाद का हाथ बढ़ता देख राजगुरु को हंसी आ गई। बोले, "पण्डितजी! आपकी पिस्तौल का आतंक पुलिस वालों पर बुरी तरह छाया है। बिना पूरी तैयार के वे पण्डितजी का सामना भला कैसे करेंगे।"

"बात तो सही है। हमें हर काम सोच-समझकर करना है। सबको तीन दिन बाद दिल्ली में इकट्ठा होना है।"

वे तीनों ही वहां से चल दिए।

पुलिस का घेराव

दोपहर के दो बजे का समय था। सूर्य पूर्ण प्रतिभा के साथ चमक रहा था। जेठ के महीने की गर्म हवा के थपेड़े शरीर को झुलसा देते थे।

ऐसा लग रहा था मानो हवा में आग बरस रही हो। एकाएक पुलिस ने चन्द्रशेखर आज़ाद के घर को घेर लिया। सिंह की मांद में घुसना साधारण बात नहीं थी। इतना साहस जुटाना किसी के लिए भी मुश्किल था। पुलिस को घर का घेरा डाले एक घण्टा हो चुका था। अब तक पुलिस कुछ नहीं कर पाई थी।

डी॰ आई॰ जी॰ के निर्देश से घर के किवाड़ तोड़ दिए गए। पुलिसकर्मी भी विवश थे। नौकरी तो नौकरी है। उन्होंने अपनी जान संकट में डालते हुए, किवाड़ तोड़ना शुरू कर ही दिया। घर के अन्दर से दनादन गोलियां छूटने लगीं, जिससे कई पुलिस वाले घायल हो गए।

उधर चन्द्रशेखर, भगतसिंह और राजगुरु तीनों कानपुर के प्रसिद्ध नेता गणेशशंकर विद्यार्थी के यहां पहुंचे हुए थे। वहां से गणेशशंकर विद्यार्थी ने तीनों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया। उन तीनों के ही घर से निकलने के बाद आज़ाद के घनिष्ट साथी शुक्लजी वहां पहुंचे थे। किसी को वहां न देखकर, वे अन्दर लेट गए। लेटते ही उन्हें नींद आ गई। पुलिस के विचार से घर में चन्द्रशेखर थे।

शुक्ल और पुलिस के बीच घण्टों संघर्ष चलता रहा। दोनों ओर से गोलियां चलती रहीं। आखिर एक आदमी कब तक पचासों का सामना कर पाता! शुक्ल के कारतूस खत्म हो चुके थे। पिस्तौल लेकर वह बगल की खिड़की से छत पर चढ़े। बराबर के मकान से दो गोलियां आकर उनकी पीठ से टकराईं, वे वहीं ढेर हो गए।

शुक्ल ने अकेले ही पुलिस के छक्के छुड़ा दिए थे। शुक्ल ने सिद्ध कर दिया था कि क्रान्तिकारी कितने वीर होते हैं? अन्त में पुलिस वाले आस-पास की छतों पर चढ़ गए थे। शुक्ल के छत पर चढ़ते ही एक ने शुक्ल पर गोलियां चला दी थीं।

एक क्रान्तिकारी वीर शहीद हो चुका था। घर के अन्दर से भी कोई गोली नहीं आ रही थी। पुलिस वाले सकपकाते हुए भीतर की तरफ कदम बढ़ा रहे थे। पुलिस ने घर का एक-एक कोना छान मारा। चन्द्रशेखर कहीं नहीं मिले। पुलिस निराशा से हाथ ही मलती रह गई।

अन्त में वे शुक्ल के शव और अपने घायल पुलिसकर्मियों को लेकर चले गए।

भगतसिंह और राजगुरु इस बीच दिल्ली चले गए थे तथा आज़ाद अपने काम से कानपुर में ही रुक गए।

घटना के तीन दिन बाद पुलिस को एक सूचना मिली कि चन्द्रशेखर माल रोड पर कहीं जा रहे हैं। उन्होंने उनका पीछा किया, परन्तु इस बार भी आज़ाद पुलिस के हाथों से निकल गए।

पुलिस को मिली यह सूचना गलत नहीं थी। आज़ाद उस समय माल रोड से होकर दिल्ली जाने के लिए, स्टेशन की ओर जा रहे थे। भेष बदलने में वे बहुत प्रवीण थे। चलते-चलते ही अपना भेष बदल लिया करते। बेचारे मुखबिर का बताया हुलिया पुलिस को नहीं मिल पाया। वे आज़ाद के नज़दीक से होकर गुज़र गए, लेकिन आज़ाद को कोई नहीं पहचान सका। पुलिस को चकमा देकर आज़ाद स्टेशन पहुंचे। दिल्ली जाने वाली दिल्ली मेल में सवार होकर वे दिल्ली की ओर चल दिए। पुलिस ने कानपुर का कोना-कोना छान मारा, कई लोगों से पूछताछ भी की गई, परन्तु आज़ाद के बारे में कोई खबर नहीं मिली। माता जगरानी से भी पूछा गया। उन्होंने सच-सच बता दिया, "वह दो वर्ष बाद यहां आया था। घण्टेभर बाद कहीं चला गया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती।" पुलिस को उन्हें अधिक तंग करने का साहस न हुआ। वे एक सिंह की मां थीं। कौन अपनी जान गंवाने को तैयार होता। पुलिस वहां से भी निराश लौट आई।

दिल्ली में 'आज़ाद'

मथुरा रोड पर दिल्ली का एक पुराना किला है। लम्बे समय से यह आज भी जीर्णावस्था में है। इसी के पास अब भारत सरकार ने चिड़ियाघर बनवा दिया है। वहां पहले कब्रिस्तान होता था। उन दिनों यहां आज़ादी का कोई नामोनिशान नहीं था। वहां कोई आता-जाता नहीं था।



8 दिसम्बर, 1928 के निश्चित दिन देश के कोने-कोने से क्रान्तिकारी आकर इसी किले के दक्षिणी गेट के खण्डहर में जमा हुए। सभी के पहुंचने पर उपस्थित सभी लोगों ने सर्वप्रथम शहीद वीरों को श्रद्धांजलि दी। रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफाक उल्ला खां और साथियों को याद किया गया, फिर सबने ब्रिटिश सरकार का तख्ता उलट करने और देश को स्वतन्त्र करने की शपथ खाई। चन्द्रशेखर आज़ाद को दल का सबसे बड़ा नेता मनोनीत किया गया। सरकार के अत्याचारों के विरोध में भाषण हुए। कई विचारों पर तर्क-वितर्क किए गए। इसी अवसर पर उन नए संगठन का नाम 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतान्त्रिक सेना' रखा गया तथा भविष्य की नीति और कार्यक्रम निश्चित किए गए। तत्पश्चात् सभी लोग अपने-अपने अड्डों के लिए निकल पड़े।

उधर सरकार चन्द्रशेखर को अपने गिरफ्त में लेने का हर सम्भव प्रयास करती रही। एक पुलिस अफसर 'तसद्दुक हुसैन' विशेष रूप से आज़ाद को गिरफ्तार करने के लिए नियुक्त था। तसद्दुक हुसैन दिन-रात आज़ाद को तलाश करता रहता और क्रान्तिकारियों के विरुद्ध प्रमाण जुटाता।

आज़ाद ने सोचा कि इस अफसर को गोली मारकर समाप्त ही क्यों न कर दिया जाए। बाद में विचार आया कि उसकी हत्या से बेकार ही दो-चार क्रान्तिकारियों को फांसी की सज़ा मिल सकती है। आज़ाद नें उसे मारने का विचार छोड़ दिया, लेकिन वह आज़ाद के पीछे साए की तरह पड़ गया। एक दिन आज़ाद उसके सामने आ गए और उसके सीने पर पिस्तौल रखकर बोले, "बता, क्या चाहता है?"

जान किसे प्यारी नहीं होती? पिस्तौल देखकर उसकी घिग्घी बंध गई। उसने हाथ जोड़ दिए, उसकी वाणी न जाने कहां गुम हो गई थी।

"अब से मेरा पीछा करने की कोशिश की तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा।"

आज़ाद ने धमकाया और जाने का इशारा किया।

वह चुपचाप वहां से खिसक लिया। भविष्य में उसनें कभी आज़ाद

का पीछा करने की हिम्मत नहीं की।

सवेरे का समय था। कानपुर का रेलवे-स्टेशन पुलिस के जवानों से घिरा हुआ था। खबर मिली थी कि आज़ाद लखनऊ से कानपुर आने वाले हैं। लखनऊ वाली ट्रेन कानपुर स्टेशन पर खड़ी थी। पुलिस वाले पूरी सतर्कता बरतते हुए घूम रहे थे। आज़ाद के कदम निडरता से ट्रेन से बाहर पड़े। डिब्बे से निकलकर वे फाटक पर आए। वे जैसे ही बाहर जाने को बढ़े, अचानक एक पुलिस अफसर उनके आगे खड़ा हो गया। उन्होंने मुस्कराते हुए अपनी पिस्तौल पर हाथ फेरा। यह देखकर पुलिस अफसर ऐसा कांपने लगा जैसे सिंह का पंजा उठाते देख, शिकार के प्राण सूख गए हों। घबराकर अफसर पीछे सरक गया। आज़ाद बाएं हाथ से मूंछों पर ताव देते, मस्तानी चाल से स्टेशन से बाहर निकल आए। पुलिस से कुछ करते न बना। वे हक्के-बक्के खड़े देखते रह गए। इस बीच आज़ाद टैक्सी में सवार होकर निकल चुके थे।

गवर्नर साहब का पी॰ ए॰

रात के आठ बजे का समय था। सेठ दिलसुखराय अपने आलीशन मकान में मसनद लगाए बैठे थे। कमरा खूब सजा हुआ था। सामने मुनीमजी बहीखाता पकड़े हुए बैठे थे। मोटी रकम का हिसाब लगाया जा रहा था। सेठ का चौकीदार कल्लू दौड़ता-दौड़ता अन्दर आया। कल्लू की सांस फूल रही थी। वह बोला, ''सेठजी! कोई साहब आए हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।''

''मुनीमजी! ज़रा देखिए तो, कौन साहब इतनी रात गए मिलने आए हैं?'' सेठ ने कहा।

मुनीम ने बाहर आकर देखा। एक साहब अंग्रेज़ी वेश-भूषा में सुसज्जित खड़े थे। मुनीम ने हाथ जोड़कर पूछा, ''हुज़ूर, कहां से आ रहे हैं? क्या काम है सेठजी से?''

''हम गवर्नर का पी॰ ए॰ है। हम लखनऊ से आया है। सेठ से मिलना मांगटा, जल्दी बुलाओ।''

मुनीम धोती सम्भालते हुए भीतर भागा। सेठजी से बोला, "कोई बड़े साहब आए हैं। कहते हैं कि लाट साहब के यहां लखनऊ से आए हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।"

लाट साहब का नाम सुन सेठजी घबरा गए। बाहर को दौड़े। साहब को झुककर सलाम किया और बोले, "आइए हुजूर! अन्दर आइए। इतनी रात को आने की तकलीफ कैसे की? मुझे बुलवा लिया होता। मैं ही आपकी सेवा में हाज़िर हो जाता।" अन्दर जाकर साहब को सोफे पर बिठाया गया। सेठ और मुनीम हाथ जोड़े खड़े थे।

"सेठ डिलसुकराय, आपका नाम?" साहब ने पूछा।

"जी सरकार! मेरा ही नाम दिलसुखराय है।"

"हम टुमारा बहीखाटा डेखना मांगटा।"

"क्या हुजूर इनकम टैक्स ऑफिसर हैं?"

"नहीं, हम गवर्नर साहब का पी॰ ए॰ है। टुमको मालूम, कुछ डिन पहले हमारा गवर्नमेंट का जर्मनी से लड़ाई खटम हुआ।"

"जी हुजूर! उसमें हमारी अंग्रेज़ी सरकार की जीत हुई है।"

"हां! गवर्नमेंट की लड़ाई में बहुट-सा खर्चा करना पड़ा। गवर्नमेंट का खज़ाना खाली हो गया है। गवर्नर साहब के पास इंग्लैण्ड से एम्परर 'जार्ज फिफ्थ' का टार आया है। हिन्डुस्टान में सेठ-साहूकार से चण्डा वसूल करो।"

"जी।"

"चण्डा, इनकम टैक्स के मुटाबिक वसूल किया जाएगा। हम बहीखाटा डेखना मांगटा।"

"हुजूर बहीखाता देखकर क्या करेंगे? बेकार की तकलीफ क्यों करते हैं? ऐसे ही बता दें कि मुझे कितना देना है?"

"बाहर हमारा क्लर्क और चपरासी होगा, उनको बुलाओ।"

मुनीम दौड़कर दोनों को बुला लाया।

साहब ने क्लर्क से पूछा, "सेठजी से किटना रुपया लेना होगा?"

क्लर्क ने फाइल अलट-पलटकर देखी। दो-चार पन्ने पलटे, फिर

बोला, "कम-से-कम पच्चीस हज़ार।"

सेठ के पैरों तले से ज़मीन खिसक गई। हाथ जोड़कर बोले, "सरकार ये तो बहुत अधिक है।"

"बहुट नहीं है। लड़ाई के डिनों में टुमने गवर्नमेंट को रुपया डेकर बहुतट मडड किया है। गवर्नमेंट टुमसे बहुट ख़ुश है। टुम्हें अगले महीने राय बहाडुर का खिटाब डिया जाएगा।"

राय बहाडुर के खिताब की बात सुनकर सेठ की बांछें खिल गईं। मुस्कराकर बोले, "अच्छा तो सरकार, अभी या कल सवेरे?"

"नहीं, अभी डो। हमको बहुट-से काम हैं।" इसके बाद क्लर्क को देखकर बोले, "सेठ का पच्चीस हज़ार का रसीड काटो। अगले महीने इन्हें राय बहाडुर का खिटाब डिया जाएगा।"

"जी हुजूर।" क्लर्क रसीद बनाने लगा।

सेठ मुनीम को देखते हुए बोला, "मुनीमजी, साहब को रुपया तो देना ही है, चलो अभी दे दो।"

"हां सेठजी! साहब कहते हैं तो दे दीजिए। आज या कल से हमें क्या फर्क पड़ता है।" मुनीम से सेठ की हां-में-हां मिलाई।

सेठ उठा और जाकर उसी समय तिजोरी खोलने लगा। नोटों की गड्डियां हाथों में लेकर आया। साहब को नोट थमाते हुए बोला, "हुजूर! समय की बात नहीं है। आप जब जिस समय आवश्यक समझें, आप फरमाएं। रुपया हम सरकार को देंगे ही, लेकिन हुजूर अपनी बात का ध्यान रखें।"

"हां, हां! ज़रूर! राय बहाडुर का खिटाब आपको अगले महीने ज़रूर मिलेगा।"

क्लर्क ने रुपये अपने बैग में भरे और चपरासी को बैग थमा दिया। रुपये लेकर तीनों वहां से निकल गए। सेठ मुनीम के साथ साहब को उनकी कार तक पहुंचाने आया।

सेठ लौटकर फिर मसनद पर आड़ लगा बैठ गए। सेठ अपने नाम के साथ राय बहादुर और जुड़ जाने के सपने देख रहा था। सेठ का



चेहरा खिला हुआ दिखाई दे रहा था।

मुनीम शायद सेठ की खुशी का अनुमान लगा रहा था। मुनीम कहने लगा, "अब तो सेठ छगनलाल खूब ज़लेगा। तीन पुश्तों से कोशिश करते-करते मरे जा रहा है, उसके यहां कोई राय साहब भी न हुआ। आप तो राय बहादुर बन जाएंगे।"

"मुनीमजी! सब भगवान की कृपा है। बड़े-बूढ़ों के आशीर्वाद का फल है। हम तो किसी लायक भी न थे।"

"पुलिस, पुलिस!" कल्लू चौकीदार दौड़ता हुआ अन्दर घुसा। सेठ घबराकर खड़ा हो गया। आठ-दस सिपाही और पुलिस इन्स्पेक्टर भीतर घुसे। सेठ के पास आकर रुके।

"सेठजी! यहां कोई आया था?" इन्स्पेक्टर ने सवाल किया।

"अभी थोड़ी ही देर पहले तो लाट साहब के पी॰ ए॰ साहब आए थे। चन्दे का पच्चीस हज़ार ले गए हैं।"

"कौन पी॰ ए॰? कौन-सा चन्दा? उनका हुलिया कैसा था?"

"गोरे रंग के, लम्बे कद के, थोड़े-से पतले थे। साहब टोप लगाए हुए थे।"

"कितने लोग थे?"

"जी! पी॰ ए॰ के साथ दो आदमी और थे। एक नाटे कद का क्लर्क था और एक तगड़ा मूंछें ऊपर चढ़ाए हुए चपरासी था।"

"समझा, वे चन्द्रशेखर और भगतसिंह थे। वे किधर को गए हैं?"

"सरकार वे माल रोड की तरफ ही गए हैं, पर ये लोग हैं कौन? मुझसे पच्चीस हज़ार रुपये चन्दा ले गए।"

"सेठजी, ये लोग सरकार के पक्के दुश्मन हैं। ये मशहूर बागी चन्द्रशेखर और भगतसिंह थे।"

"हाय राम! मैं बरबाद हो गया, मैं लुट गया। मुनीमजी, ये तो बहुत बुरा हो गया।"

"हां सेठजी! बड़ा धोखा हुआ हमारे साथ।"

पुलिस इन्स्पेक्टर तुरन्त ही सिपाहियों को ले कार का पीछा करने

उसी दिशा में निकल गए।

'अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।' पुलिस के हाथ कुछ न आया।

क्रान्तिकारियों को धन की आवश्यकता हमेशा रहती ही थी। वे अपनी आवश्यकताओं को इसी तरह की योजनाओं द्वारा पूरी करते थे। सेठ दिलसुखराय के यहां भगतसिंह गवर्नर के पी॰ ए॰ बनकर पहुंचे थे। आज़ाद चपरासी के भेष में थे और राजगुरु क्लर्क का अभिनय कर रहे थे।

लॉर्ड इरविन की स्पेशल

चन्द्रशेखर आज़ाद के घर से बहुत दूर, कानपुर के एक छोटे-से मकान में आज़ाद, भगतसिंह और विजयकुमार साथ-साथ रह रहे थे। एक दिन वहां राजगुरु, सुखदेव और दूसरे साथी भी आ पहुंचे। बंगाल से बटुकेश्वरदत्त भी आए हुए थे। योजना के मुताबिक वे एक मीटिंग के लिए वहां इकट्ठा हुए थे। इस मीटिंग के कुछ खास उद्देश्य थे।

बटुकेश्वरदत्त के आने की खुशी में विजयकुमार दौड़कर दो डबलरोटी ले आए। सब लोग चाय पीने बैठे तो डबलरोटी के टुकड़ों को देखकर आज़ाद ने कहा, "यह डबलरोटी कहां से आई?"

"बटुकेश्वर भइया इतनी दूर से आए हैं, चाय के साथ कुछ नाश्ता तो होना ही चाहिए।"

आज़ाद ने कड़ककर कहा, "हम लोग जीवन को दांव पर लगाकर मौत से खेलते हैं। हमारा स्वागत खाने-पीने की चीज़ों से नहीं, गोलियों से होता है। स्वाद बनाने या स्वागत करने के लिए हमारे पास पैसा कहां है? एक-एक पैसा जोड़कर हमें शस्त्र और कारतूस खरीदने होते हैं।"

विजयकुमार ने क्षमा मांगते हुए कहा, "आज़ाद, अब जो गलती हो चुकी है, आगे फिर नहीं होगी। अब तो खा ही लीजिए।"

तब बड़ी मुश्किल से आज़ाद ने डबलरोटी का एक टुकड़ा मुंह में डाला था।

इसके ठीक दो दिन बाद तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इरविन किसी कार्यवश दिल्ली से बाहर जाने वाले थे। इस विषय पर क्रान्तिकारियों में कुछ विचार-विमर्श होना था। आज़ाद पहले ही एक योजना बना चुके थे। अपनी योजना उन्होंने सबके सामने रखी, योजना सभी को पसन्द आई। अन्य क्रान्तिकारियों ने भी अपनी सहमति प्रकट कर दी।

इसके कुछ ही समय बाद पुलिस का एक सिपाही हाथ में छोटी-सी सन्दूक लिए हुए वहां पहुंचा। आज़ाद को देखते ही सलाम करने के बाद उसने सन्दूक आगे बढ़ाते हुए कहा, "मुझे सी॰ आई॰ डी॰ के इन्स्पेक्टर साहब ने आपकी सेवा में भेजा है। इस सन्दूक में कारतूस हैं। उन्होंने यह भी कहलाया है कि आप लोग शाम तक इस मकान को अवश्य छोड़ दें।"

आज़ाद ने सन्दूक थाम लिया, फिर खोलकर देखते हुए सिपाही से कहा, "हमारी ओर से इन्स्पेक्टर साहब को बहुत-बहुत धन्यवाद देना। उनसे कहना, जैसा उन्होंने कहा है वैसा ही होगा। आज शाम तक यह मकान उन्हें खाली मिलेगा।"

आज़ाद के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कई बार पुलिस भी उनकी सहायता कर देती थी। बहुत-से धनी लोग उनका काफी सम्मान करते थे और धन से उनकी सहायता करते रहते थे। आखिरकार क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश सरकार से टक्कर ली थी, अतः उन्हें हमेशा ही धन की आवश्यकता रहती थी।

दिल्ली-मथुरा रेलवे लाइन पर सौ-सौ गज़ के फासले में पटरी के दोनों ओर पुलिस के सिपाही खड़े थे। वायसराय की गाड़ी कुछ ही देर में यहां से गुज़रने वाली थी। वायसराय के लिए एक स्पेशल गाड़ी आनी थी। इस लाइन पर आने-जाने वाली सभी ट्रेनें मथुरा में जहां थीं, वहीं रोक दी गईं। दिल्ली से एक स्पेशल गाड़ी धड़धड़ाती हुई चल दी। फरीदाबाद से गाड़ी गुज़र रही थी कि एक ज़ोर का धमाका हुआ। स्पेशल के डिब्बे और सौ गज़ लम्बी रेल की पटरी हवा में बिखर गए। वायसराय की बोगी बाल-बाल बच गई।

यह धमाका आज़ाद और उनके साथियों द्वारा लगाए गए 'टाइम बम' के फटने से हुआ था। पुलिस की आंखों में धूल झोंककर इसे रेलवे लाइन पर चुपचाप रख दिया गया था।

घटना के बाद वायसराय का कहीं भी आना-जाना बन्द हो गया। ब्रिटिश सरकार अब चौकन्नी हो गई थी। हर तरफ अंग्रेज़ अफसरों की अपनी मौत दिखाई देती थी। सरकार ने फिर क्रान्तिकारियों की धर-पकड़ आरम्भ कर दी। पुलिस के अफसर सचेत हो गए थे। क्रान्तिकारियों के साथ-साथ बेगुनाहों को भी जेलों में भर दिया गया। अंग्रेज़ों की दमन-नीति और अधिक सक्रिय हो गई।

साइमन कमीशन और सांडर्स हत्याकाण्ड

ब्रिटिश सरकार के सामने जन-आक्रोश खुलकर सामने आने लगा था। सन् 1914 से लेकर सन् 1919 तक चले प्रथम विश्वयुद्ध के कारण बहुत-से देशों में युद्ध हो रहे थे। ब्रिटिश सरकार जर्मनी के विरुद्ध चलने वाले इस पूरे युद्ध में भारतीयों की भरपूर मदद लेना चाहती थी। अंग्रेज़ों ने भारतीयों को बड़े-बड़े आश्वासन दिए। भारत को आज़ाद करने के कई सपने दिखाए। महात्मा गांधी जैसे बड़े-बड़े नेताओं ने इस युद्ध में लाखों रंगरूट भर्ती करवाए। महायुद्ध समाप्त हो जाने पर अंग्रेज़ अपने किए गए वादों से मुकर गए। इस कारण जनता काफी भड़क चुकी थी। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन भी आरम्भ कर दिया गया।

अंग्रेज़ी सरकार ने घोषणा की कि जल्दी ही इंग्लैण्ड से एक कमीशन भारत भेजा जाएगा। इस कमीशन में आधे लोग भारतीय होंगे। यह कमीशन जनता की मांगों को जानने-समझने के लिए आएगा। कमीशन में कुल सात सदस्य थे। इनमें भारतीय कोई नहीं था, सभी अंग्रेज़ थे। इस कमीशन की अध्यक्षता साइमन कर रहे थे। अतः उस कमीशन को 'साइमन कमीशन' के नाम से जाना गया।

अंग्रेज़ कभी भारतीयों के पक्ष में निर्णय नहीं दे सकते थे, यह बात

भारत के नेता जानते थे। कमीशन तो मात्र एक धोखा था, मात्र दिखावा! कमीशन के इंग्लैण्ड से चलते ही भारतीय नेताओं ने उसका विरोध करना शुरू कर दिया। स्थान-स्थान पर सभाएं होने लगीं। काले झण्डे दिखाकर साइमन कमीशन का विरोध किया गया। हर तरफ से सरकार को विरोध का सामना करना पड़ा।

कमीशन कई नगरों में घूमा। पंजाब की राजधानी लाहौर में भी कमीशन पहुंचने ही वाला था। कुछ नौकरशाही अंग्रेज़ सरकार के पिट्ठू उनके स्वागत के तैयारी पूरी कर रहे थे। बड़े-बड़े अफसर कमीशन के सदस्यों को लेने स्टेशन जा रहे थे। हज़ारों लोग हाथों में काली झण्डियां लिए बढ़े जा रहे थे। इन लोगों का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे।

'साइमन कमीशन वापस जाओ!', 'साइमन कमीशन धोखा है!', 'जनता का शोषण समाप्त करो!' के नारों से वातावरण गूंज उठा था।

जुलूस सटेशन की ओर बढ़ने लगा। अपार भीड़ के सामने नौकरशाही के छक्के छूटने लगे। बड़ी संख्या में पुलिस वाले आकर भीड़ को रोकने लगे। भीड़ को तितर-बितर हो जाने को कहा गया। पुलिस के बार-बार कहने से भी भीड़ पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा था। सब आगे की ओर बढ़ते ही रहे। अन्त में पुलिस के लोग अत्याचारी शासन की करतूत दिखाने पर तुल गए। निहत्थे लोगों पर लाठियां बरसाने का हुक्म दे दिया गया। लाठियां बरस पड़ीं। हज़ारों के सिर फूटे, हाथ-पैरों पर चोटें आईं। अनकों बेहोश होकर गिर पड़े। लोकप्रिय वरिष्ठ कांग्रेसी नेता लाला लाजपतराय बुरी तरह घायल हुए। उन पर गहरी चोटें आई थीं। कुछ दिन अस्पताल में रहने के बाद यह लोकप्रिय नायक 'पंजाब केसरी' संसार से चल बसा।

लाला लाजपतराय की मृत्यु के बाद बदले की आगे भड़क उठी। क्रान्तिकारियों के हृदय में प्रतिहिंसा की आग जल उठी। आज़ाद, भगतसिंह, राजगुरु और जयगोपाल सभी ने अपने प्रिय नेता की मृत्यु का बदला लेने की शपथ खाई।

वे लालाजी की मौत का बदला लेने की योजना बनाने लगे। इस दल का प्रत्येक कार्य केन्द्रीय समिति के सदस्यों के बहुमत से लिए गए निर्णय के अनुसार किया जाता था, परन्तु उस समय लाहौर में दल के सभी सदस्य नहीं थे। फिर भी लाहौर में रह रहे सभी सदस्य इस योजना से सहमत थे। तुरन्त निर्णय लिया जाना था और लाहौर से बाहर के सदस्यों को इतनी जल्दी बुलाना सम्भव नहीं था। अन्ततः दिसम्बर, 1928 के पहले सप्ताह में लाहौर के मज़ंग मोहल्ले के एक मकान में दल की बैठक हुई और बदला लेने का निर्णय लिया गया।

लाहौर के पुलिस अधीक्षक स्कॉट को मार देने की योजना बनाई गई। इस योजना को कार्यरूप देने के लिए चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, शिवराम, राजगुरु तथा जयगोपाल इन चार युवकों का दल नियुक्त किया गया। कुछ दिन पहले से जयगोपाल को स्कॉट के आने-जाने का रास्ता देखने तथा उसकी गतिविधियों का निरीक्षण करने के लिए लगा दिया गया। जयगोपाल इस सबकी टोह लेने लगा।

निश्चित दिन 15 दिसम्बर, 1928 को जयगोपाल को पुलिस के कार्यालय पर कुछ देर पहले भेज दिया गया। वह साइकिल लेकर पहुंच गया। उसने साइकिल कार्यालय के गेट के सामने ऐसे खड़ी कर दी कि मानो उसमें कोई खराबी आ गई हो। भगतसिंह तथा राजगुरु द्वारा हत्या की जानी थी। चन्द्रशेखर आज़ाद गेट के सामने डी॰ ए॰ वी॰ कॉलेज की दीवार के भीतर छिपे हुए थे। उनको यह काम सौंपा गया था कि जब हत्या करने के बाद भगतसिंह तथा राजगुरु भागें तो वे उनका पीछा करने वालों को रोकें। इस कार्य को करने में वे बड़े निपुण थे। सड़क पर साइकिल खड़ी करने का उद्देश्य यह था कि यदि शिकार पर गोली चूक जाए तो साइकिल पर बैठकर उसका पीछा किया जा सके।

निश्चित समय पर सभी लोग अपने-अपने स्थानों पर पहुंच गए। यहां एक गलती यह हो गई कि जयगोपाल सांडर्स को ही वास्तव में स्कॉट समझ बैठा था। जैसे ही सांडर्स अपनी मोटरसाइकिल पर बैठकर

कार्यालय के गेट पर आया। जयगोपाल ने संकेत किया और राजगुरु ने तुरन्त गोली उसकी गर्दन पर दाग दी। सांडर्स तत्काल मोटरसाइकिल सहित गिर पड़ा। इसके बाद कोई कसर न रहे, इसलिए तड़ातड़ चार-पांच गोलियां भगतसिंह ने उसके सिर पर और मार दीं। काम खत्म होने पर दोनों डी॰ ए॰ वी॰ कॉलेज के अहाते की ओर बढ़े। इस पर कार्यालय के बरामदे में खड़ा एक सिपाही चिल्लाने लगा। तब ट्रैफिक इन्स्पेक्टर फर्न तथा अन्य दो सिपाही उनका पीछा करने के लिए भागे। भगतसिंह ने फर्न पर गोली चला दी। उसने अपने को झुककर बचा लिया, किन्तु इस प्रयत्न में वह गिर पड़ा। दूसरे सिपाही चौंके, किन्तु उन्होंने पीछा करना नहीं छोड़ा। इस पर आज़ाद ने अपना माउज़र पिस्तौल तानकर उन्हें भाग जाने की चेतावनी दी। चाननसिंह कुछ अधिक ही वीरता दिखाना चाहता था, उसने पीछा करना नहीं छोड़ा। तब आज़ाद ने गोली चला दी, निशाना अचूक था, अतः वह भी हमेशा के लिए नीचे गिर पड़ा।

चाननसिंह के गिर पड़ने पर फिर किसी की पीछा करने की हिम्मत नहीं हुई। चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह तथा राजगुरु डी॰ ए॰ वी॰ कॉलेज के छात्रावास में पहुंचे। वहां से चन्द्रशेखर आज़ाद और राजगुरु साइकिले पर बैठकर पिछले गेट से निकल गए। भगतसिंह कुछ देर बाद अपने एक साथी के कोट, पैंट, हैट तथा कुछ पैसे लेकर चल पड़े।

साहब, मेम और चपरासी

सांडर्स की हत्या के बाद हर तरफ सनसनी थी। सारे नगर में पुलिस का जाल बिछा था। सड़कें, गलियां, कूंचे, जहां देखो पुलिस वाले खड़े दिखाई देते।

सांडर्स के बंगले के पास ही डी॰ ए॰ वी॰ कॉलेज था। पुलिस को सन्देह था कि सांडर्स को मारने वाले क्रान्तिकारी यहीं-कहीं छिपे हुए हैं। कॉलेज को चारों तरफ से घेर लिया गया। कोना-कोना छान मारा गया। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गए। पुलिस के हाथ कोई सबूत भी न लगा।

लाहौर रेलवे स्टेशन पर एक साहब कार से उतरे। वे अंग्रेज़ी वेश-भूषा में थे। सिर पर फैल्ट हैट लगाए, मुंह से धुआं उड़ाते हुए बाहर निकले। साथ में भरे-पूरे शरीर वाली, पूर्ण आधुनिकता से सजी, अंग्रेज़ी मेम भी थीं। पीछे-पीछे फाइलों को बगल में दबाए एक चपरासी आ रहा था। यहां पर सांडर्स के हत्यारों की तलाश हो रही थी। पुलिस यहां भी काफी संख्या में थी। हर आने-जाने वाले पर कड़ी नज़र रखी जाती। अफसर ने साहब को कार से उतरते देख सीधे तनकर 'सैल्यूट' मारा और एक तरफ खड़ा हो गया।

चपरासी टिकट घर से दो प्रथम श्रेणी के और एक सामान्य दर्जे का टिकट ले आया। तीनों मेल में सवार हो अमृतसर चल दिए। पुलिस की आंखों में धूल झोंकने के लिए क्रान्तिकारियों ने नाटक रचा था। ये कोई वास्तविक मेम व चपरासी नहीं थे। भगतसिंह साहब के रूप में थे। स्वयं चन्द्रशेखर आज़ाद मेम के वेश में थे। राजगुरु चपरासी का अभिनय कर रहे थे। अपने इस असाधारण अभिनय से क्रान्तिकारी वीरों ने पुलिस की आंखों में धूल झोंकी। तीनों अमृतसर पहुंच चुके थे। वहां से तीनों अलग-अलग गाड़ियों में सवार हुए। अब वे पंजाब की धरती पर से सकुशल बहुत दूर निकल गए थे। पुलिस हाथ मलती ही रह गई। निराशा के सिवाय पुलिस के हाथ कुछ नहीं लगा।

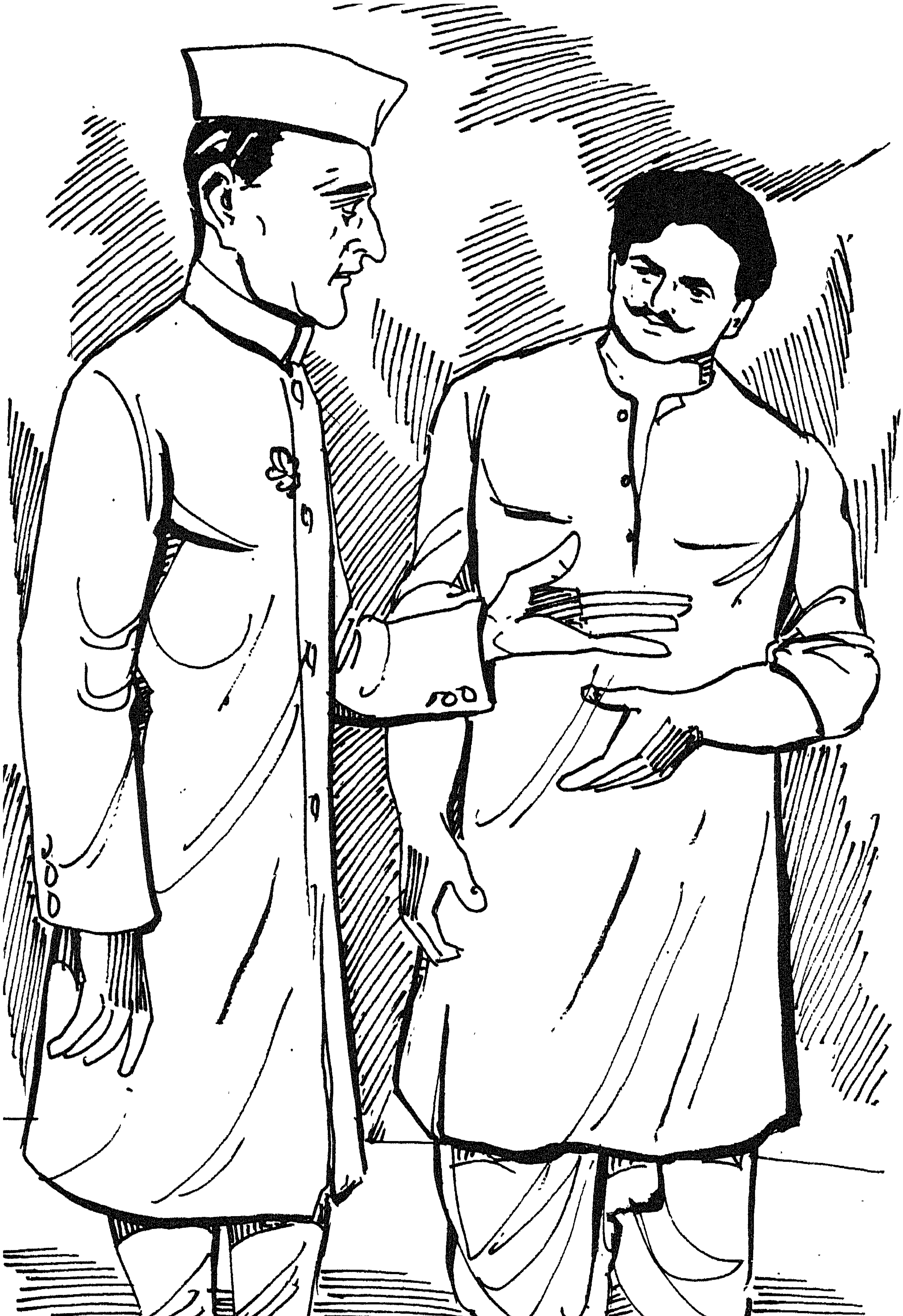
पण्डित मोतीलाल नेहरू ने आज़ाद को एक बार आनन्द भवन में बुलवाया। आज़ाद वहां पहुंचे। दोनों में काफी देर तक बातचीत होती रही। उनके बीच ब्रिटिश राज के खिलाफ चल रहे विद्रोह के बारे में बात चलती रहती।

नेहरूजी ने आज़ाद से कहा, "मैं नहीं समझता, तुम मुट्ठीभर वीर मामूली शस्त्रों द्वारा, इतनी बड़ी शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार से जीत पाओगे। इस तरह तुम क्या कर पाओगे?"

"बस आपका आशीर्वाद चाहिए, सब हो जाएगा।"

"लेकिन कैसे?"

"इतने बड़े हाथी को एक छोटी-सी चींटी भी समाप्त कर देती है।



नींबू के रस की एक बूंद, दूध से भरे कढ़ाह को फाड़ देती है। फिर हमारे साथ तो सारा देश है। पूरे देश की जनता की क्रान्तिकारियों से सहानुभूति है। अत्याचारी अत्याचार बढ़ाता है तो विद्रोह की आग भी उतना ही भड़कती है।''

नेहरू उनकी बातें सुन रहे थे। वीर आज़ाद के शब्द आत्मविश्वास से भरे थे।

आज़ाद ने आगे कहा, ''ये तो छोटी-छोटी घटनाएं है। ब्रिटिश सरकार को हम यह आगाह कराना चाहते हैं कि हम लोग शक्ति में कम नहीं हैं। ब्रिटिश सरकार अब भी सम्भल जाए तो अच्छा है। वह दिन दूर नहीं, जब अंग्रेज़ों को खदेड़ दिया जाएगा।

''किन्तु अफसरों को मारने से क्या लाभ? एक मरता है, दूसरा उसकी जगह ले लेता है।''

''हम केवल अत्याचारियों को ही तो मारते हैं। जब अत्याचार पराकाष्ठा से पार हो जाएं तो उन्हें चुपचाप सहा नहीं जा सकता। तब जनता में विरोध की भावना जाग जाती है और अत्याचारियों को दण्ड मिलता है।''

नेहरूजी आज़ाद की बातों से बहुत प्रभावित हुए और प्रशंसा करते हुए आज़ाद की पीठ थपथपाई।

असेम्बली में बम

अंग्रेज पूंजीवाद को बढ़ावा दे रहे थे। इस तरह ये लोग कठोर शासन ही नहीं बल्कि अपनी कुनीतियों से गरीबों और मजदूरों को पेट भरने के लिए अनाज और तन ढंकने के लिए कपड़ों से भी वंचित कर रहे थे। पूंजीवादियों वाली उनकी यह नीति धीरे-धीरे 'जोंक की तरह' भारतवासियों का खून चूस रही थी। कई जगहों पर मजदूर अपनी न्यायोचित मांगों के लिए हड़ताल करना चाहते थे। अंग्रेज़ी शासन को उनके प्रति कोई सहानुभूति न थी। अंग्रेज़ी सरकार पूंजीपतियों की सरकार थी। पूंजीपति लोगों के मन की बात सोचना ही सरकार का

काम था। अब मजदूरों की हड़तालों को दबाने को दबाने के लिए एक क़ानून बनाने के बारे सोचा जाने लगा।

'पब्लिक सेफ्टी बिल' नामक एक बिल असेम्बली में पास होने वाला था।

उधर लाहौर में चन्द्रशेखर आज़ाद और उनके साथियों को पकड़ने के लिए पुलिस सतर्क हो गई थी। सांडर्स की मौत की खबर हर तरफ फैल चुकी थी। शहर से हर बाहर जाने वाले रास्ते को बन्द कर दिया गया।

भगतसिंह और राजगुरु वेश बदलकर कलकत्ता के लिए निकल पड़े। इसके बाद आज़ाद भी साधु वेश में मथुरा पहुंचे। अन्त में तीनों अपने आगरा स्थित एक गुप्त अड्डे पर मिल गए। यहां पर बम बनाए जाते थे।

दूसरी तरफ लोगों में 'पब्लिक सेफ्टी बिल' के बारे में सुनकर त्राहि-त्राहि मचने लगी। क्रान्तिकारी भी इस कानून का विरोध करने के लिए इन लोगों के साथ हो लिए।

यह बिल 9 अप्रैल, 1929 को असेम्बली में पास होने वाला था। सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त किसी तरह असेम्बली भवन की गैलरी में जा पहुंचे।

बिल का पढ़ा जाना शुरू ही हुआ कि धमाके की आवाज़ से सभी थर्रा गए। सभी का ध्यान आकृष्ट करने के लिए उन्होंने खाली बैंचों पर बम फेंका था। उन्होंने ऊपर से परचे फेंकने आरम्भ कर दिए, जिन पर लिखा था, "हम सभी भारतवासी 'पब्लिक सेफ्टी बिल' का विरोध करते हैं। मजदूरों पर अत्याचार नहीं होने दिया जाएगा।"

तभी वहां पुलिस आ पहुंची। दोनों क्रान्तिकारियों के हाथों में हथकड़ियां डाल दी गईं। भारत के दो सिंहों ने अपने-आपको पिंजरे में बन्द करवा लिया।

पुलिस ने एक बार फिर से क्रान्तिकारियों की धरपकड़ तेज कर दी। पंजाब और उत्तर प्रदेश में जगह-जगह क्रान्तिकारियों के अड्डों पर

छापे मारे जाने लगे। कई बार तो निर्दोष लोगों को भी जेलों में बन्द कर दिया गया। साथ-ही-साथ पुलिस के कब्जे में इस बार कई प्रमुख क्रान्तिकारी भी आ गए। चन्द्रशेखर आज़ाद इस बार भी पुलिस को चकमा देकर फरार हो गए।

पकड़े गए क्रान्तिकारियों के विरुद्ध कई मुकदमे चलाए गए। बटुकेश्वरदत्त और अन्य कुछ साथियों को कालापानी की सजा दी गई। तीन मुख्य क्रान्तिकारियों सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा सुना दी गई।

आशा की किरण

यमुना की लहरें शान्त थीं। उसके किनारे पर पीली सरसों से भरे लम्बे-लम्बे खेत दूर-दूर तक लहलहाते थे। हवा धीरे-धीरे बह रही थी। वह सरसों के पौधों में लहर-सी पैदा कर दूर तक लहरा जाती। आभास होता था मानो सोने के समुद्र में लहर उठ रही हो। खेतों में काम करते किसानों के मस्तीभरे फाग की गूंज वातावरण में फैल रही थी। स्त्रियां और बच्चे साग चोंट रहे थे। फूलों का रस ढूंढ़ती रंग-बिरंगी तितलियां चारों तरफ नाचती फिर रही थीं, पेड़ की डालों पर चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई दे रही थी।

यमुना के किनारे इस आनन्दमय वातावरण में भी चन्द्रशेखर कुछ चिन्तित होकर सोच रहे थे। ब्रिटिशराज ने भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी का दण्ड सुनाया है। बटुकेश्वर और दूसरे साथी भी कालापानी भोगेंगे। सभी वीर तो इस स्वतन्त्रता देवी की भेंट चढ़ चुके हैं, पर आज़ादी न जाने कब मिल पाएगी।

काकोरी काण्ड के बाद रामप्रसाद 'बिस्मिल' और अशफाक उल्ला खां आदि साथी फांसी के तख्ते पर चढ़ गए। मेरा तो उस समय हृदय ही कांप उठा था। निराश होकर सब कुछ भूल बैठा था। वीर सावरकर, जो पूज्य गुरु के समान हैं। उन्होंने ही मेरा साहस बढ़ाया। एक नई स्फूर्ति दिलाई। भगतसिंह, बटुकेश्वरदत्त और राजगुरु जैसे साथी मुझे

मिले। 'बिस्मिल' के चले जाने पर सब मन्द पड़ गया था, इन साथियों के आने से उत्साह फिर बढ़ गया।

इन साथियों के बिना अब क्या होगा? क्या बिस्मिल और भगतसिंह जैसे वीर ढूंढ़ने से मिल सकेंगे? क्या भारत माता इतने वीर सपूतों के बलिदान के बाद भी परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी ही रहेंगी?

असहयोग आन्दोलन और बाकी नर्म दल की कार्य प्रणाली भी अब ढीली होती लग रही है। कैसा तमाशा बना हुआ है। क्या आज़ादी जैसी कोई चीज है? भारत के बच्चे-बच्चे में क्रान्ति की भावना पैदा करना हमारा ध्येय था। यह सपना पूरा होता लग रहा है। अंग्रेज़ों को एक दिन हमेशा के लिए ही भारत छोड़कर जाना होगा। वह दिन अब दूर नहीं है।

भले ही 'बिस्मिल', भगतसिंह और राजगुरु न हों, भारत के लोग उनके बलिदानों से प्रेरणा लेंगे। ये आग अब और भड़क उठेगी। सन् 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम क्रान्ति की आग और अधिक भड़का गया था। मंगल पांडे जैसे वीर को भी सारी सेना के सामने तोप के मुंह पर बांधकर उड़ा दिया गया था। उन दुष्टों ने सोचा था, इससे जनता पर आतंक छा जाएगा, लेकिन फल सोच के विपरीत ही हुआ। स्वतन्त्रता की आग पूरे देश में भड़क उठी थी। लाखों की संख्या में देश के वीर सेनानी आज़ादी के लिए कट मरे। हिन्दू-मुस्लिम में कोई भेद नहीं था। सब एक थे, भारतवासी थे। तात्या टोपे, नाना साहब और लक्ष्मीबाई जैसे वीर सेनानियों ने दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह ज़फर के नाम से अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह का झण्डा उठाया था। हैदराबाद के निज़ाम और ग्वालियर के राजा ने देशद्रोह न किया होता तो देश कब का आज़ाद हो जाता। तब 1857 का विद्रोह, विद्रोह न कहलाता। तब यह विद्रोह भारत की एक राज्य क्रान्ति के नाम से जाना जाता। उस स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेज़ों को विजय नहीं मिली थी, कुछ देशद्रोहियों की गद्दारी से सफलता मिली थी।

महारानी विक्टोरिया के शब्द-जालों से भरे घोषणा-पत्रों से भारतीय

अपने अधिकारों को कुछ दिनों के लिए भूल-से गए। फिर भी बहुत-से पिण्डारी और लुटेरों के रूप में बहुत से लोग अंग्रेज़ी राज्य के प्रति असन्तोष प्रकट करते रहे।

अंग्रेज़ों के बारे में यह धारणा गलत नहीं होगी कि वे बड़े कूटनीतिज्ञ हैं। 1885 में ए॰ ओ॰ ह्यूम नाम के अंग्रेज़ ने कांग्रेस की नींव डाली। उन्होंने सोचा कि पढ़े-लिखे लोग कांग्रेस में आ जाएंगे और सरकार के प्रति लोगों का विरोध कम हो जाएगा। वे लोग जो कुछ भी सरकार से मांगेंगे, लिखित रूप में ही मांगेंगे और ये लोग हमारी दृष्टि के अन्तर्गत ही काम करेंगे। जब चाहे हम उन्हें जेल में डाल देंगे। कांग्रेसी पढ़े-लिखे लोग सशस्त्र विद्रोहियों को समझाकर शान्त करते रहेंगे। लोहे से लोहा कट जाएगा। हम बिना बाधा के राज्य कर सकेंगे।

लेकिन वे समझ नहीं सके कि कांग्रेस में लोकमान्य तिलक जैसे भी लोग हैं, जो उनके बन्धन की रस्सी को सांप बनाकर ही छोड़ेंगे। अब वही कांग्रेस अंग्रेज़ों के लिए जी का जंजाल बन चुकी है। यह जो कहना असम्भव ही है कि असहयोग आन्दोलन निरर्थक है। उससे जन-साधारण में जागरण की भावना आई है। स्वराज्य के लिए जनता जाग्रत हुई है। ब्रिटिश सरकार कहां समझ सकेगी कि भारत के लोग अब सचेत ही नहीं हैं, बल्कि वे अंग्रेज़ों को उखाड़ फेंकने की शक्ति भी रखते हैं।

खुदीराम बोस सत्रह वर्ष की उम्र में देश के लिए फांसी पर लटक गए। बोस ने सिद्ध कर दिया कि भारत का नौजवान खून, आज़ादी के लिए जान की बाज़ी लगाना किसी खेल से कम नहीं समझता। यह खून एक-एक अंग्रेज़ को छांट-छांटकर जान से मारने की शक्ति रखता है।

1920 की योजना अगर सफल हो जाती तो अंग्रेज़ों का निशान तक भारत में न होता। उस समय पूरे उत्तरी भारत में क्रान्तिकारियों का जाल बिछ चुका था। लाहौर, बनारस, पटना और कलकत्ता मुख्य केन्द्र थे। बंगाल के क्रान्तिकारी एकजुट थे। उन्होंने घोषणा कर दी थी, 'ब्रिटिश सरकार की जितनी भी सेना और पुलिस बंगाल में है, हम लोग उनके लिए काफी हैं। वह हमारा बाल भी बांका नहीं कर सकते।'

जगह-जगह 'डायनामाइट' और कारतूसों से रेलवे पुलों को उड़ाने की योजना बन रही थी। इन रेल मार्गों और पुलों का प्रयोग सरकार एक जगह से दूसरी जगह शस्त्र तथा सेना पहुंचाने में करती थी। इस सैनिक सहायता को नाकाम करने के लिए ये पुल ध्वस्त कर दिए जाते। बनारस केन्द्र के अध्यक्ष स्वयं श्री रासबिहारी बोस थे। उत्तर प्रदेश में सरकार से मोर्चा लेने की पूरी तैयारियां थीं।

लेकिन दुःख की बात है कि कुछ देशद्रोही लोग क्रान्तिकारियों के साथ मिले हुए थे। क्रान्ति के निश्चित समय से चौबीस घण्टे पहले ही सरकार को इन देशद्रोहियों से सूचना मिल गई। जगह-जगह छापे मारे गए। कई क्रान्तिकारियों को बन्दी बना लिया गया। उस समय सरकार के हाथ अस्त्र-शस्त्रों के भण्डार भी आ गए।

इससे एक ही बात सिद्ध होती हैं कि भारतवासियों में कुछ लोग मानसिक रूप से गुलाम हैं। ब्रिटिश सरकार अपने बल-बूले पर कुछ नहीं कर सकती है। उन्हीं भारतीयों से अत्याचार कराकर ये लोग निष्कटंक शासन कर पाते हैं।

भारत का क्रान्तिकारी इतिहास त्याग, साहस और वीरता का इतिहास है। मानसिक-दासता में जकड़े कुछ लोगों की धारणा है कि हम सरकार के विरुद्ध विफल रहे हैं। लेकिन यह उन लोगों की भूल है। सरकार से अधिक इन लोगों ने ही हमें अधिक आघात पहुंचाया है। कांग्रेस का तो इस परिस्थिति में मुख्य हाथ रहा। अहिंसा की नीति के कारण लोगों ने हमारे मार्ग को बहुत कम अपनाया। क्यों कोई जान जोखिम में डालने की बात सोचता! नेताओं के तो ठाट ही हैं। जेल जाते हैं, जनता भी फूल-मालाओं से विदा करती है। जेल से बाहर आएं तो भी फूल-मालाओं से नेताओं का स्वागत किया जाता है। उधर गर्म दल वाले अपने सगे-सम्बन्धी तक से नहीं मिल सकते। पुलिस के हाथ आए तो फांसी का तख्ता तैयार रहता है। नर्म दल का मार्ग ही आसान है, इसीलिए जनता उन्हीं के साथ जाती है।

फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि इस संग्राम में इन नेताओं

का त्याग नहीं रहा है। उन्होंने भी तो कष्ट उठाए हैं। सभी कुछ सहना पड़ा है। धन की हानि, घर से दूर तथा आर्थिक कष्ट, पुलिस की मार और सभी यातनाएं तो उन्होंने सही हैं। सच में हमारे जैसे नौजवानों के लिए तो उनका ही मार्ग कठिन है। अहिंसा की रीति से, अपने पर हो रहे अत्याचार को सह पाना कोई छोटी बात नहीं है। प्रतिहिंसा इस परिस्थिति में मानव का स्वभाव होता है। प्रतिहिंसा जाग्रत हो जाना तो स्वाभाविक है। प्रतिहिंसा की भावना को हृदय में दबाकर रखना तपस्या के समान है। ध्येय तो दिनों मार्गों का एक ही है। मार्ग का ही तो अन्तर है।

ये भी सम्भव है कि जाते समय अंग्रेज़ शासन अहिंसावादियों को ही सौंप जाएं, लेकिन यह निश्चित है, एक सशस्त्र क्रान्ति तो गोरों के खिलाफ होकर रहेगी ही। भले ही सरकार अत्याचारों से उस क्रान्ति को दबा दे, अंग्रेज़ों का जीना यहां पर कठिन हो जाएगा। घबराकर उन्हें भारत से भागना ही पड़ेगा, लेकिन अब, अब क्या योजना बनाएं?'

सोचते-सोचते आज़ाद का ध्यान वर्तमान समस्याओं पर केन्द्रित हो गया, 'अतीत को दोहराने से क्या होगा? कोरी कल्पना से तो कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता। अतीत से प्रेरणा तो लेनी ही चाहिए। ऐसे कार्य करें जिनका भविष्य में शुभ फल मिल सके। पिछले कार्यों से तो लगता है, हम बिल्कुल कूटनीतिज्ञ नहीं रहे। हमारे दल के लोग वीर और त्यागी तो होते ही हैं।

और वीरता भी कैसी? आवश्यकता से अधिक ही वीरता थी। हाल ही की बात में, केवल यही बतलाने को कि हम मज़दूरों के विरुद्ध पास होने वाले, 'पब्लिक सेफ्टी बिल' का विरोध करते हैं, भगतसिंह, राजगुरु, बटुकेश्वरदत्त और सुखदेव ने अपने-आपको गिरफ्तार करवा लिया था और अब उन्हें फांसी लगने को है।

परिणाम क्या हुआ? सारी योजनाएं विफल लगती हैं। दल का कार्य बन्द हो गया है। काकोरी काण्ड के समय पहले ही हमारे कुछ साथियों ने इस परिस्थिति में सरकार के टक्कर लेने को मना कर दिया

था। बिस्मिल उस समय माने नहीं। वही जिद भगतसिंह आदि ने भी की और फल देख रहे हैं।

सचमुच ही गांधीजी का मार्ग इससे अच्छा है। उनका कार्य तो बन्द नहीं होता। भले ही सरकार सबको जेलों में भर दे। अपनी दमन-नीति का प्रयोग करे, जनता के उत्साह में तो कमी नहीं आती।

अहिंसा को मैं कायरों का ही हथियार समझता रहा हूं, लेकिन आज मन इस बात को स्वीकारता नहीं। मन को वश में रखना सबसे कठिन काम है। यह भी तो किसी पराक्रम से कम नहीं है। मन को वश में करके ही अहिंसा का पालन किया जा सकता है।

अहिंसा का रास्ता मेरे लिए तो बन्द हो गया लगता है। ब्रिटिश सरकार का सबसे बड़ा शत्रु तो मैं ही हूं। मेरी गिरफ्तारी के लिए दस हज़ार रुपये का इनाम भी रख दिया गया है। ब्रिटिश सरकार के वश में हो तो वह मेरी बोटी-बोटी कटवाकर फिंकवा देने को भी तैयार हैं।''

आज़ाद यही सब कुछ सोचते-सोचते मस्तिष्क की एक शून्य अवस्था में पहुंच गए। शून्य अवस्था से थोड़ा विचलित हो बड़बड़ा उठे, 'नहीं! मैं अहिंसा का मार्ग नहीं अपना सकता, ये मेरे लिए अनुचित है। मेरा नाम आज़ाद है, 'मैं' आज़ाद रहा हूं और आज़ाद ही रहूंगा। चाहे ब्रिटिश सरकार सारी शक्ति लगा ले, मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाएगी। कभी धोखे से ऐसा समय आ भी गया तो इस ब्रिटिश सरकार को मेरी लाश ही मिलेगी।

सरकार अपना काम करती रहे। मुझे इससे क्या? मैं तो अपना काम करता ही रहूंगा। उत्तरी भारत से भले ही हमारे दल का नाम मिट रहा है। जनता हमारा साथ देने में घबराती है, किन्तु दक्षिण मैं तो बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा है। केवल एक अच्छे संगठनकर्ता का ही आवश्यकता है। पूज्य गुरु सावरकर का आशीर्वाद हमारे साथ है। मुझे विश्वास है, हमें अवश्य सफलता मिलेगी।''

नई आशा और नए साहस को हृदय में भरकर आज़ाद वहां से चल दिए।

एक बार कुछ लोगों ने आज़ाद को सुझाव दिया कि अब क्रान्तिकारी दल बिखर चुका है, इसलिए उन्हें भागकर रूस चले जाना चाहिए, क्योंकि पकड़े जाने पर उनके लिए फांसी निश्चित थी। यह सुनकर आज़ाद ने कहा, "मेरा शरीर भारत की मिट्टी से बना है। मैं आज़ादी के लिए शत्रु से लड़ते-लड़ते इसी देश की धरती पर मरकर इसी मिट्टी की धूल बन जाऊंगा, अतः मेरे सामने रूस जाने की बात भी मत करो।"

लाहौर जेल

लाहौर सैण्ट्रल जेल में सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव तीनों बन्द कर दिए गए थे। तीनों को अलग-अलग कोठरियों में डाला गया था। बाकी सभी कैदी अपनी-अपनी बैरकों में पड़े सो रहे थे। सभी रात को नींद पूरी कर रहे थे। सुबह चार बजे का घण्टा बजा। सरदार भगतसिंह की नींद खुली, वह पड़े-पड़े सोचने लगे, "हम तीनों को फांसी की सज़ा मिली है। अपील हाईकोर्ट तक तो पहुंची है, उसका भी कोई फायदा नहीं लगता। ये अपील भी सरकार का ढोंग लगती है। फांसी तो अब हमें निश्चित ही लगनी है। जल्द ही कोई दिन हमारी मौत बनकर आने वाला है।

मौत? या अमरता?

नहीं! आज़ादी के लिए प्राण न्योछावर करने वाले मरा नहीं करते। मौत वीरों को कभी नहीं आती। कायर तो जीते-जी मरे होते हैं। वीर मरकर भी अमर होते हैं। शरीर तो नश्वर है, एक दिन सबको तो मिटना है। आत्मा कभी नहीं मरती। शरीर इस देश की मिट्टी, पानी और हवा से बना है। ये तो सौभाग्य की ही बात है कि हमें अपने देश की मिट्टी ही मिली, जहां हम अपना बलिदान देने जा रहे हैं।

संसार में बन्धन-ही-बन्धन हैं, लेकिन बन्धन तो शरीर के लिए ही होते हैं। आत्मा को कोई नहीं बांध सकता। आत्मा सभी बन्धनों से मुक्त है। ये ब्रिटिश सरकार देश भक्तों को फांसी पर चढ़ाती है। सोचती है, जनता पर गुलामी की पकड़ मजबूत हो जाएगी। अंग्रेज़

सरकार जानती नहीं कि शासन कभी भी मनुष्य के शरीरों पर नहीं किया जाता। शासन तो मनुष्य के हृदय पर किया जाता है। देश में गुलाम आज वही लोग हैं, जो मानसिक रूप से गुलाम हो चुके हैं। उन लोगों की आत्मा मर चुकी होती है। वे देश के हित में कुछ सोच नहीं पाते। देशभक्तों में ही देश की वास्तविक आत्मा का निवास होता है। देशभक्त कभी गुलाम नहीं हो सकता।

इस अत्याचारी शासन को इस बात का सबक बार-बार मिलता ही रहता है। एक सबक हमारे साथी यतीन्द्रनाथ ने कुछ ही दिन पहले दिया था। तिहत्तर दिन तक भूखे पेट उपवास रखकर भले ही वह स्वर्ग सिधार गए, ब्रिटिशराज उन्हें रत्तीभर भी उनके निश्चय से नहीं डिगा सकी। वे अपनी ज़िद पर अटल रहे। क्या कभी गुलाम अपनी ज़िद पर अड़ा रहा सकता है?

अत्याचारों के बल पर अत्याचारी भले ही कुछ दिन जमा रह जाए, किन्तु शहीद का बलिदान देश की आत्मा में प्राणों का संचार कर देता है। जिस देश में ये शहीद रहे हों वह देश भला कितने दिन गुलाम रह सकता है।

खुशी की बात यह है कि हम तीनों का नाम भी अब शहीदों की इस लम्बी सूची में जुड़ने वाला है। लेकिन हमारे बाद क्या होगा? दल का काम किस प्रकार चलेगा?

हां! अभी हमारा नेता 'आज़ाद' तो है, जो जीवित रहेगा। आज़ाद वास्तव में आज़ाद ही है। जब तक वह है, हमें चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। उसके समान संगठनकर्ता कहां मिल सकता है! वह सचमुच दुर्लभ है। वह अपनी प्रतिभा और चतुरता से कई भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव पैदा कर सकता है। जब तक वह है, तब तक हमारा सशस्त्र क्रान्तिकारी दल नहीं मिट सकता।

लेकिन वह अकेला....वह अकेला इतना यह सब कैसे करेगा? सरकार पूरी शक्ति से पहले ही उसे गिरफ्तार करने की कोशिश में है। संगठन बनाने और उसे शिक्षित करने में आखिर कुछ समय तो लगता

ही है। इधर चन्द्रशेखर को इतना समय भी कहां मिल पाता है। पुलिस चप्पे-चप्पे पर उसे ढूंढ़ रही है।

कहीं इस बीच....नहीं!....ऐसा नहीं हो सकता। भगवान उस वीर की अवश्य रक्षा करेंगे। इन खरीदे गुलाम, पुलिस वालों पर आज़ाद का आतंक कम नहीं है। आज़ाद को गिरफ्तार करने का किसी में साहस नहीं हैं। भला सिंह की मांद में कोई गीदड़ कैसे हाथ डाल सकता है?"

भगतसिंह इन्हीं विचारों में खोए थे कि पास की कोठरी से आवाज़ आने लगी—

'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है, जोर कितना बाजु-ए कातिल में है।।'

राजगुरु अपनी कोठरी में गा रहे थे।

सुखदेव सोचने लगे, "राजगुरु जो गा रहा है, ठीक ही गा रहा है। हम लोगों को फांसी पर चढ़ाकर ब्रिटिश सरकार कुछ नहीं कर पाएगी। क्रान्ति की लहर जो भारत में लोगों में आई है, सरकार इस लहर को मिटा नहीं सकती।

वीरों के द्वारा जितने बलिदान होंगे, उतनी ही क्रान्ति की आग भी भड़केगी। देश में उतने ही क्रान्ति के लिए शहीद होने वाले वीर उत्पन्न होते रहेंगे। देश के कोने-कोने में आवाज़ उठेगी—

'नहीं रखनी सरकार ज़ालिम, नहीं रखनी।
चढ़ जाएंगे सूली पे हम, पर गुलामी की ज़ंजीर नहीं रखनी।'

सुखदेव भी तालियों के साथ आनन्द से गाने लगे। राजगुरु का गाना तो पहले ही अन्य कैदियों को सुनाई दे रहा था। सभी कैदी उनकी आवाज़ बड़े ध्यान से सुन रहे थे। अब वे सुखदेव के गाने को भी सुनने लगे।

नेहरू दम्पति से भेंट

गांधीजी द्वारा चलाया गया असहयोग आन्दोलन सन् 1930 तक समाप्त हो चुका था। कांग्रेस के कई नेता जेलों में छूट गए थे। महात्मा

गांधी और वायसराय लॉर्ड इरविन के मध्य वार्ता चल रही थी। दोपहर के तीन बजे थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू अपने आनन्द भवन में बैठे हुए देश की विविध समस्याओं पर विचार कर रहे थे, उनकी धर्मपत्नी, कमला नेहरू उनके पास ही बैठी थीं। अचानक वहां एक हृष्ट-पुष्ट नौजवान उपस्थित हुआ। केवल तहमद बांधे और मोटा जनेऊ धारण किए हुए वह जवान नंगे बदन उनके सामने आकर खड़ा हो गया। उसका गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, उमेठी हुई नोंकदार मूंछें उसके विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचय दे रही थीं।

दोनों पति-पत्नी आगंतुक को आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखते रह गए।

नौजवान ने दोनों हाथों जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और नेहरूजी की ओर उन्मुख होते हुए बोला, "क्या आप मुझे पहचान रहे हैं?"

"नहीं! मैं तुम्हें नहीं पहचान सका।" नेहरूजी ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया।

"मेरा नाम चन्द्रशेखर है।"

नाम सुनते ही नेहरूजी चौंक गए। उनकी आंखों में अचानक ही प्रेम झलक आया। बहुत ही प्रेम से आज़ाद का हाथ पकड़कर, अपने पास बिठाते हुए बोले, "नौजवान, तुम्हारा नाम बहुत सुना है, तुम जैसे वीरों को जन्म देकर ही तो भारत मां वीरों की जननी कहलाती है।"

आज़ाद ने नम्र स्वर में कहा, "मैं कांग्रेस के सभी नेताओं का याद करता हूं। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और आपके प्रति मेरी विशेष श्रद्धा है, क्योंकि लोकमान्य तिलक ने सबसे पहले हमें सिखलाया कि स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। गांधी जी ने सभी के मन-मस्तिष्क में स्वराज्य की भावना जगाई है और आपने सबसे पहले पूर्ण स्वराज्य की मांग का नारा लगाया।"

पण्डित नेहरू आज़ाद की बातों को चुपचाप सुने जा रहे थे। आज़ाद ने आगे कहा—"पूज्य तिलक अब नहीं रहे और गांधीजी महात्मा हैं। वे सत्य और अहिंसा की शिक्षा के अतिरिक्त हमें शिक्षा ही

क्या देंगे? देश के विश्वासपात्र और भावी नेता आप ही हैं, अतः मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहूंगा।''

''पूछो! तुम क्या पूछना चाहते हो?'' नेहरूजी ने कहा।

''जैसा कि सभी को मालूम है, गांधी इरविन समझौता होने जा रहा है। मैं जानना चाहता हूं कि इस समझौते में क्रान्तिकारियों का क्या स्थान होगा?''

''कैसा स्थान?''

''गांधीजी ने हमारे लिए क्या सोचा है? वह इरविन से हमारे हित में क्या बात करना चाहेंगे?''

''आज़ाद, इस विषय पर मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बता सकता, मैं विवश हूं। तुम्हें क्या बताऊं? गांधीजी क्रान्तिकारियों के हित में कुछ भी नहीं करना चाहते।''

''क्यों नहीं करना चाहते? क्या देश के लिए हमने कोई त्याग नहीं किया है? क्या हम देशद्रोही हैं?''

''हम जानते हैं, आपने पुलिस के डण्डे खाए हैं, बहत-से कष्ट झेले हैं, बड़े-बड़े त्याग किए हैं, फिर हमने भी तो भूखे-नंगे रहकर, जान हथेली पर रखकर, देश-सेवा की है।''

''गांधीजी का मार्ग अहिंसा का है और हमारा हिंसा का, लेकिन हमारा लक्ष्य तो अलग नहीं। हमारे और आपके त्याग में अन्तर अवश्य है, लेकिन हमारा त्याग भी देश-हित और देश के लिए ही है। आज गांधी-इरविन समझौते में सत्याग्रहियों के लिए बहुत-सी बातें हो रही हैं, हमें इससे कोई द्वेष नहीं। आज हमारे तीन वीर फांसी पर लटकाए जाने वाले हैं, कई तो कालेपानी की कालकोठरियों में कैद हैं। उनके प्रति उपेक्षा का व्यवहार क्यों? आप गिरफ्तार हुए तो अधिक-से-अधिक कुछ दिनों की जेल, फूलों से विदाई और छूटने पर फूलों से स्वागत, किन्तु हमारी गिरफ्तारी का मतलब है फांसी का फन्दा।''

कहते-कहते आज़ाद भावावेश में आ गए। खड़े होकर उन्होंने पण्डित नेहरू के दोनों कन्धे पकड़ लिए और झकझोरते हुए कहने लगे,

"भारत के कर्णधार! मैं आपसे विनती करता हूं कि मेरी बात का ठीक-ठीक उत्तर दें। ऐसा क्यों हो रहा है?"

आज़ाद की हृदय को विह्वल कर देने वाली बातें सुनकर कमला के हृदय में वात्सल्य उमड़ आया। उनकी आंखों में स्नेह के आंसू थे। पण्डित नेहरू के हृदय में भी करुणा का ज्वार फूट पड़ा। रुंधे स्वर में बोले, "आज़ाद, तुम्हारे प्रश्नों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। मैं विवश हूं।"

आज़ाद कुछ क्षण तक सोचते रहे, फिर दोनों को प्रणाम कर चले गए।

क्रान्तिकारी साथियों की मुक्ति का प्रयास

सन् 1930 में कांग्रेस का आन्दोलन ज़ोरों पर था। दूसरी तरफ क्रान्तिकारी दल के भगतसिंह आदि अनेक सदस्य जेल में थे। आज़ाद चुप नहीं बैठे थे। इस समय उनके मुख्य सहयोगी भगवतीचरण थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि भगतसिंह को सरकार अवश्य फांसी पर लटका देगी। इस समय आज़ाद तथा भगवतीचरण ने भगतसिंह को जेल से मुक्त कराने की योजना बनाने की सोची। उन्होंने योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया। सरकार भगतसिंह को फांसी देने पर तुली हुई थी। यदि ऐसे समय में उन्हें जेल से छुड़ा लिया जाता तो पूरी दुनिया में तहलका मच जाता। आज़ाद उन्हें छुड़ाने की इस योजना को कार्यरूप देकर सरकार की जड़ें हिला देना चाहते थे।

इस योजना पर पहले आज़ाद और भगवतीचरण कई दिनों तक विचार करते रहे, कि इसके लिए कितनी तैयारी करनी होगी। कार्यवाही के समय कुछ पुलिस वालों तथा दल के सदस्यों का मारा जाना भी आवश्यक होगा, इसके लिए बमों, पिस्तौलों आदि की भी आवश्यकता थी। इसके साथ ही एक-दो कारों तथा इस सब सामान को छिपाने के लिए जेल के पास ही किसी मकान को भी किराए पर लेना पड़ता। इस योजना में महिलाओं को सम्मिलित किया जाए अथवा नहीं, इस पर भी

विचार किया गया। योजना का निश्चय हो जाने पर यशपाल, सुखदेवराज, धन्वन्तरि आदि को भी इसके बारे में बताया गया तथा इस योजना में दुर्गा भाभी एवं सुशीला दीदी का भी सहयोग लेना निश्चित किया गया।

लाहौर के बहावलपुर रोड पर एक मकान किराए पर लिया गया। यहां कौन रहता है, इस विषय में किसी को किसी प्रकार का सन्देह न हो, इसके लिए उक्त दोनों महिला सदस्याएं वहीं रहने लगीं। सभी पास-पड़ोस के लोग यही समझते थे कि यहां कोई परिवार रह रहा है।

इसके लिए रविवार 1 जून, 1930 का दिन निश्चित किया गया। भगतसिंह तथा बटुकेश्वरदत्त लाहौर सैन्ट्रल जेल में थे तथा लाहौर काण्ड के अन्य अभियुक्त बोरस्टल जेल में थे। मुकदमा एक ही था, इसलिए सप्ताह में एक दिन रविवार को इस काण्ड के सभी अभियुक्तों को मिलने का अवसर दिया जाना सरकार ने मान लिया था, ताकि वे आपस में सलाह कर सकें। उक्त दिन भगतसिंह तथा दत्त को पुलिस द्वारा सैन्ट्रल जेल से दिनभर के लिए बोरस्टल जेल ले जाया जाना था। तय किया गया कि जब भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त को पुलिस जेल के गेट से सड़क पर कुछ दूरी पर खड़ी मोटर में बैठाने के लिए ले जाए तो पुलिस पर बमों तथा रिवॉल्वरों से धावा बोल दिया जाए और अपनी गाड़ी सही स्थान पर पहले से तैयार रखी जाए। जब क्रान्तिकारियों तथा पुलिस में आपस में सामना हो रहा हो तो भगतसिंह तथा बटुकेश्वरदत्त इस गाड़ी में बैठ जाएं और ड्राइवर उन्हें लेकर चल दे। पुलिस पर धावा बोलने के लिए क्रान्तिकारियों के दो समूह बनाए गए थे। एक दल बमों से हमला करता, जिसका नेतृत्व भगवतीचरण को करना था। दूसरा दल पुलिस को पीछा करने से रिवॉल्वरों से रोकता। इसके नेता चन्द्रशेखर आज़ाद बनाए गए थे।

इस योजना के लिए भगतसिंह से भी सम्पर्क करके सलाह कर ली गई थी। बोरस्टल जेल में पुलिस का सुरक्षा प्रबन्ध सैन्ट्रल जेल की तुलना में कम था। अतः भगतसिंह का विचार था कि पुलिस पर हमला

बोरस्टल जेल के बाहर किया जाए तो अच्छा रहेगा, किन्तु बोरस्टल जेल बड़ी सड़क से कुछ दूर पीछे को थी, अतः भगतसिंह एवं बटुकेश्वरदत्त के मोटरगाड़ी में बैठने तक यहां सैन्ट्रल जेल की पुलिस भी पहुंच सकती थी और उसका दूसरी बार फिर सामना करना पड़ सकता था। अन्ततः सैन्ट्रल जेल के बाहर ही धावा बोलने की योजना निश्चित की गई। योजना रोमांचक थी। इसमें दोनों ओर से कुछ लोगों का मृत्यु को प्राप्त हो जाना निश्चित था, किन्तु क्रान्तिकारियों को मृत्यु का भय कभी रहा ही नहीं। वे ऐसा करने के लिए जी-जान से जुट गए। भगतसिंह तथा दत्त को भी इसकी सूचना दे दी गई।

इस योजना के लिए बम बनाए गए, अतः उनकी उपयोगिता देखने के लिए भगवतीचरण ने उनका पूर्व परीक्षण करने का विचार किया। इस परीक्षण के लिए 28 मई, 1930 के दिन सुखदेवराज तथा बच्चन, इन दो क्रान्तिकारियों को साथ लेकर वे रावी के किनारे पहुंचे और रावी पार कर जंगल में चले गए।

इधर अन्य क्रान्तिकारी बहावलपुर रोड वाले मकान में थे। योजना को कार्यरूप देने में केवल दो दिन शेष रह गए थे, अतः यहां उपस्थित लोग हथियारों की साफ-सफाई में लग गए। आज़ाद ने प्रत्येक को अलग-अलग कार्य सौंपे थे, इसलिए सब अपना-अपना कार्य करने लगे। इसी बीच एक तांगे में घायल सुखदेवराज आते दिखाई दिए। वह दर्द से कराह रहे थे, उनके पैर में कपड़े की पट्टी बंधी थी, जो अत्यधिक रक्त बहने से लाल हो चुकी थी। उन्हें तांगे से उतारकर अन्दर ले जाया गया। तब उनसे ज्ञात हुआ कि बम के परीक्षण के समय बम भगवतीचरण के हाथ में फट गया था जिससे उनका हाथ उड़ गया। उसी के कारण सुखदेवराज के पैर में भी गम्भीर चोट लगी थी। भगवतीचरण की हालत अत्यन्त गम्भीर थी। उन्होंने सुखदेव को यहां भेजा था, ताकि अन्य सदस्यों को इसका समाचार दिया जा सके।

सुखदेवराज उन्हें छोड़कर आना न चाहता था, परन्तु भगवतीचरण ने उनसे कहा, "बचने की कोई आशा नहीं। इतना खून बह चुका है

कि मैं अब बच नहीं सकता। न ही तुम मुझे बहावलपुर रोड तक पहुंचा सकते हो। मैं यह भी नहीं चाहता कि इस हालत में जाने से किसी को सन्देह हो जाए और मेरे दूसरे साथियों के लिए कोई मुसीबत खड़ी हो जाए। इसलिए अब मुझे यहीं छोड़ दो और तुम जाओ और जाकर शेष साथियों को सावधान कर दो। मेरी अब चिन्ता नहीं करना। जो कुछ होगा, देखा जाएगा।"

इस घटना का समाचार मिलने पर दल के सभी लोगों को असीम दुःख हुआ। यद्यपि क्रान्तिकारियों को मौत का कोई भय नहीं था, पर यदि वह भगतसिंह को मुक्त कराते समय मारे जाते, तो इस बात का किसी को उतना दुःख नहीं होता, इस प्रकार उनकी मृत्यु होगी, ऐसी किसी ने कल्पना भी न की थी।

वह अभी तक जीवित होंगे भी या नहीं, इस विषय में कोई भी कुछ नहीं कर सकता था, अतः उन्हें वहां से लाने के लिए दो-तीन अन्य युवकों को लेकर यशपाल उस स्थान पर गए। उनकी स्थिति अत्यन्त गम्भीर थी। मृत्यु एकदम पास थी, वह कुछ घड़ियों के मेहमान थे। उनकी अन्तिम इच्छा थी कि वह मृत्यु से पहले आज़ाद के दर्शन करना चाहते थे, इसके साथ ही उनहोंने यशपाल से यह भी कहा कि भगतसिंह को जेल से छुड़ाने की योजना रोकी न जाए, इस योजना में भाग न ले पाने का उनको जीवन में अन्तिम क्षणों तक भारी दुःख था।

वे दर्द से तपड़ रहे थे। पल-प्रतिपल उनकी हालत बिगड़ती जा रही थी। अतः उन्हें वहां से हाथों या कन्धे पर उठाकर ले जाना सम्भव न था। यशपाल अपने एक साथी को वहां पर बिठाकर शहर की ओर चले गए, ताकि स्ट्रेचर या चारपाई का प्रबन्ध किया जा सके और यदि हो सके तो किसी डॉक्टर को भी लाया जाए, किन्तु उनके जाने के कुछ ही देर बाद भगवतीचरण भी इस संसार से चल बसे।

देर रात गए जब यशपाल चारपाई, चादरें तथा दवा लेकर वहां फिर आए तो भगवतीचरण की जगह केवल उनका शव पड़ा हुआ था। वह अपने जिस साथी को वहां पर छोड़ गए थे, वह भी डरकर भाग

कया था। इससे यशपाल को बड़ी निराशा तथा भारी दुःख हुआ। शव को चादर में लपेट दिया गया। उसे अकेले वहां छोड़कर साथियों से परामर्श लेने के लिए यशपाल आवास पर लौट आए। यहां इस समाचार के ज्ञात होने पर सभी शोक के सागर में डूब गए। प्रातःकाल आज़ाद, यशपाल तथा दो-तीन दूसरे साथी वहां जाने को तैयार हो गए। भगवतीचरण की पत्नी दुर्गादेवी भी जाना चाहती थीं, किन्तु साइकिल पर बैठाकर महिलाओं को ऐसे स्थान पर ले जाना खतरे से खाली नहीं था। वह बेचारी अपने सुहाग के लुट जाने पर इस मकान में रो भी नहीं सकती थीं। उन्हें इस अवसर पर चन्द्रशेखर आज़ाद ने लिखा था—

> 'तुम हमारी मां हो, हमारी बहन हो। तुम्हारी इज़्ज़त हमारे हाथ में है और हमारी इज़्ज़त तुम्हारे हाथ में है। मैं तुम्हारी भावनाओं को समझ सकता हूं, परन्तु तुमने और भगवती भाई ने तो अपनी भावनाएं उसी दिन पांवों तले रौंद डाली थीं, जिस दिन आप दोनों इस पार्टी में शामिल हुए। इसके पहले यदि इतनी कुर्बानी की है, तो कुछ और करो।'

अतः दुर्गावती पति के अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सकीं। आज़ाद और यशपाल उस स्थान पर गए, जहां भगवतीचरण का शव पड़ा था और शव को ज़मीन में दफना दिया गया, क्योंकि इसे श्मशान में ले जाना हर प्रकार से कठिन था। एक तो जंगल में इस स्थान तक कोई वाहन नहीं आ सकता था, दूसरे यदि इसे यों ही उठाकर ले जाते तो पुलिस को पता लगने पर सभी लोग भारी विपत्ति में पड़ सकते थे।

यह वर्णन श्री वीरेन्द्र की पुस्तक 'वे इंकलाबी दिन' के आधार पर है। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने भगवतीचरण की मृत्यु का वर्णन कुछ दूसरी तरह से किया है। श्री गुप्त के अनुसार इस दुर्घटना में भगवतीचरण की अन्तड़ियां बाहर निकल आई थीं। उन्हीं के शब्दों में—

'भगवतीचरण की मृत्यु क्रान्तिकारी इतिहास की एक दर्दनाक घटना है। इसके सम्बन्ध में कई तरह की बातें सुनी जाती हैं। जो कुछ

मालूम हो सका है, उसमें केवल इतना निर्विवाद है कि 28 मई, 1930 को शाम साढ़े चार बजे भगवतीचरण एक बम लेकर प्रयोग करने के लिए रावी के किनारे पर गए। जहां बम एकाएक फट गया और भगवतीचरण बुरी तरह घायल हो गए। कहते हैं, चोट से उनकी सारी अन्तड़ियां बाहर निकल आईं थीं, किन्तु फिर भी अन्तिम समय तक उन्हें दल की धुन थी। वह तीन-चार घण्टे तक जीवित रहे, किन्तु कुछ परिस्थितियां ऐसी आईं या पैदा की गईं जिससे उन्हें डॉक्टरी सहायता नहीं पहुंचाई जा सकी।'

निःसन्देह भगवतीचरण की मृत्यु क्रान्तिकारी दल तथा भगतसिंह की मुक्ति की योजना के लिए एक भारी धक्का थी।

यद्यपि भगवतीचरण की मृत्यु से दल को भारी धक्का लगा, फिर भी योजना को पूरा किया जाना आवश्यक था। इस शोकाकुल वातावरण में एक विचित्र-सा सूनापन व्याप्त हो गया। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि इस सूनेपन को कैसे समाप्त किया जाए।

भगवतीचरण की अन्तिम इच्छा के अनुसार भगतसिंह को मुक्त कराना आवश्यक था, अतः पूर्व निश्चित समय 1 जून, 1930 को आज़ाद, यशपाल, वैशम्पायन तथा दो-तीन युवा सदस्य अपने लक्ष्य पर चल पड़े और सैन्ट्रल जेल के समीप पहुंच गए। सब पूरी तरह तैयार होकर योजना अनुसार अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो गए। भगतसिंह तथा दत्त को पहले ही इसकी सूचना दे दी गई थी, किन्तु यह योजना सफल न हो सकी।

वास्तव में इस योजना का भाग यह भी था कि जब भगतसिंह और दत्त बाहर निकलेंगे, वैशम्पायन बांसुरी बजाएगा, तो उत्तर में भगतसिंह अपना सिर खुजाएगा। जिसका अर्थ होगा कि वे भी तैयार हैं। इसके बाद कार्यवाही शुरू हो जाएगी, किन्तु न जाने क्यों भगतसिंह ने सन्केत नहीं दिया। जेल से बाहर जाते ही वह और दत्त कैदियों वाली गाड़ी में बैठ गए और पुलिस उन्हें वहां से ले गई। आज़ाद और उनके साथी वहां खड़े यह सब देखते रह गए। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया

कि यह हुआ क्या है। वे निराश होकर लौट आए।

कुछ समय बाद भगतसिंह से पूछा गया कि उसने यह सब क्यों किया तो उसने उत्तर दिया कि भगवतीचरण की मृत्यु के बाद जीवित रहने की इच्छा न रही थी। वह यह भी नहीं चाहते थे कि पार्टी की अन्तिम निशानी आज़ाद भी इस प्रयास में मारे जाएं। आज़ाद की ज़िन्दगी की कीमत पर भगतसिंह रिहाई हासिल करना नहीं चाहते थे। इसलिए जब वह जेल से निकले तो उन्होंने देखा कि उनके साथी वहां खड़े हैं। फिर भी वह इस कार्यवाही के लिए तैयार न हुए। न जाने इसमें कितने लोग मारे जाते।

भगतसिंह ने अन्तिम समय में जेल से भागने का मन ही बदल लिया था। अन्ततः 23 मार्च, 1931 को भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव तीनों वीर हंसते-हसंते फांसी पर चढ़ गए।

विश्वासघात

अब तक देश के अधिकतर क्रान्तिकारी चुन-चुनकर पकड़े जा चुके थे। चन्द्रशेखर आज़ाद मुक्त ही थे। समस्त उत्तरी भारत में उस अकेले व्यक्ति के लिए सी॰ आई॰ डी॰ पुलिस का जाल-सा बिछा हुआ था, किन्तु आज़ाद का कहीं पता न था।

अभी भी ब्रिटिश सरकार के बड़े-से-बड़े अंग्रेज़ अफसर पर उनका आतंक छाया हुआ था। उन्हें सपने में भी आज़ाद ही दिखाई देते थे। उन्हें डर था, न जाने कब और कौन-सा अंग्रेज़ आज़ाद की गोली का शिकार हो जाए।

उत्तर प्रदेश में सरकार पुलिस पर सख्ती बरत रही थी। ब्रिटिश सरकार हर प्रकार से आज़ाद की आज़ादी खत्म करना चाहती थी।

कुछ दिनों बाद सी॰ आई॰ डी॰ ने रिपोर्ट दी कि कानपुर में तिवारी नाम का आदमी आज़ाद का बहुत विश्वासपात्र बन चुका है। पुलिस अब तिवारी की खोज में लग गई। एक दिन तिवारी को इलाहाबाद के चौक बाज़ार में देखा गया। जल्दी ही पुलिस को उसका पता-ठिकाना

मालूम हो गया। उसकी गतिविधियों पर नज़र रखी जाने लगी।

धीरे-धीरे पुलिस के कुछ आदमियों ने तिवारी से मेल-जोल बढ़ाना आरम्भ कर दिया। वे तिवारी को, आज़ाद के गिरफ्तार कराने में सहायता देने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से तरह-तरह के प्रलोभन देने लगे, परन्तु उसने सभी प्रलोभन ठुकरा दिया। तिवारी के साथ किसी तरह की सख्ती करने से पुलिस हिचक रही थी, क्योंकि उन्हें आज़ाद की गोली का भी भय था।

कई दिन बाद जब पुलिस को अपने प्रयासों में कोई सफलता न मिली तो अंग्रेज़ पुलिस सुपरिंटेंडेंट नाटबाथर ने शहर कोतवाल को बुलाकर डांट लगाई, "सी॰ आई॰ डी॰ का रिपोर्ट है, आज़ाड़ इसी शहर में है, टुम कैशा कोटवाल है, उसे टुम अभी टक नहीं पकड़ सका?"

अब शहर कोतवाल ने सिटी इन्स्पेक्टर को झिड़कते हुए कहा—"जैसे भी हो आज़ाद हो जल्दी-से-जल्दी गिरफ्तार करो, वरना हम लोगों की खैर नहीं है।"

सिटी इन्स्पेक्टर पुलिस के एक आदमी को लेकर स्वयं तिवारी से मिलने गया। पुलिस का वह आदमी तिवारी से मिलने वालों में से एक था। वह तिवारी का मित्र बना हुआ था और आज़ाद के बारे में उसके पीछे पड़ा हुआ था।

सिटी पुलिस इन्स्पेक्टर से तिवारी का परिचय कराते हुए वह बोला, "आप हैं हमारे परम मित्र और आज़ाद के घनिष्ठ तथा विश्वासपात्र तिवारीजी।"

"मुझे आपसे मिलकर बेहद खुशी हुई।" इन्स्पेक्टर ने तिवारी से हाथ मिलाते हुए कहा, "मैं आपके पास बड़ी उम्मीद लेकर आया हूं।"

"मैं जानता हूं आप यहां क्या उम्मीद लेकर आए हैं, लेकिन क्षमा करें, यह देश के साथ गद्दारी है।"

"यह तो आपका भ्रम है। ब्रिटिश साम्राज्य इतना विशाल है कि उसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता। सरकार से टक्कर लेना हंसी-खेल नहीं। यह तो आप देख ही चुके होंगे, गांधीजी के आन्दोलन से ऐसा



मालूम होता था मानो अंग्रेज़ अब गए और तब गए। अन्त में गांधीजी को हारकर अपना आन्दोलन बन्द करना पड़ा। दूसरी तरफ क्रान्तिकारी दल पूरी तरह नष्ट हो चुका है, बेचारे अकेले आज़ाद कब तक बचे रह सकते हैं? कभी-न-कभी वे पुलिस के जाल में फंस ही जाएंगे। अन्तर सिर्फ यही है कि तब हमें और आपको ऐसा सुअवसर प्राप्त नहीं हो सकेगा।''

''सुअवसर! कैसा सुअवसर?'' तिवारी ने आश्चर्य से पूछा।

इन्स्पेक्टर उसकी आंखों की चमक को भांप गया, ''आज़ाद को जिन्दा या मुर्दा पकड़वाने वाले को सरकार दस हज़ार रुपया इनाम में देगी। मेरी बात मानो हाथ में आए हुए अवसर को जाने न दो, अन्यथा कोई दूसरा इसका लाभ उठा लेगा।''

''इन्स्पेक्टर साहब! आज़ाद मुझे अपना घनिष्ट मित्र मानते हैं, उनका मुझ पर पूरा विश्वास रहता है, मैं उनके प्रति कभी विश्वासघात नहीं कर सकता।''

''ओफ-हो! क्या बेकार की बात करते हो? इस संसार में कोई किसी का नहीं होता, न कोई किसी का मित्र है न सम्बन्धी, सबसे बड़ा मित्र व सम्बन्धी तो पैसा है। पैसा जिसके पास होता है, सब उसी के होते हैं। दस हज़ार की रकम कम नहीं होती, इसे पाकर तुम्हारा भाग्य चमक जाएगा।''

यह कहकर पुलिस इन्स्पेक्टर ने नोटों का बण्डल तिवारी के सामने रख दिया और बोला, ''ये रहे पांच हज़ार, बाकी के पांच हज़ार काम होने के बाद।''

लालच से बुरी कोई बला नहीं है। यह आदमी से हर पाप कराती है। इसके वशीभूत होकर भाई-भाई का गला काट डालता है, बाप बेटे का सगा नहीं रहता, पत्नी पति की हत्यारी बन जाती है। लालच के कारण ही देशद्रोहियों ने देश को परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़वा दिया।

नोटों का बण्डल देखकर तिवारी के मन में भी लालच आ गया।

वह बनावटी इन्कार करते हुए बोला, "इन्स्पेक्टर साहब! आप मुझे विवश कर रहे हैं, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

इन्स्पेक्टर समझ गया था, चिड़िया जाल में आना चाहती है। वह बोला, "मेरा कहा मानें, आपका जीवन सफल जो जाएगा।"

"लेकिन....! तिवारी कुछ हिचकिचाया।

"कोई लेकिन-वेकिन नहीं। आप बिल्कुल मत घबराइए, आपको कोई कुछ नहीं कहेगा, आपका नाम हम किसी को नहीं बताएंगे। इन रुपयों को सम्भालकर रखें।"

"देखिए आप मुझे व्यर्थ ही विवश न कीजिए।"

"अच्छा, आपकी जैसी इच्छा। वैसे शायद आप नहीं जानते, आपको इससे कितना बड़ा लाभ होगा? बाद में आप और आपके बाल-बच्चे हमेशा हमें दुआएं देते रहेंगे।"

"कैसा लाभ?"

"अरे, तिवारीजी! दस हज़ार रुपये तो आपको मिलेंगे ही, साथ ही सरकार के वफादारों में आपका नाम लिख दिया जाएगा। इसके बल पर आपको बच्चों को बड़ी-बड़ी नौकरियां मिल सकेंगी।"

"ठीक है, अगर आप नहीं मानते तो....!" इतना कहकर तिवारी ने नोटों का बण्डल इस तरह उठाया मानो वह लेना तो न चाहता हो, केवल इन्स्पेक्टर के द्वारा विवश किए जाने पर ही उसे लेना पड़ रहा हो।

तिवारी ने नोटों का बण्डल जेब में डालते हुए कहा, "देखिए, किसी को मेरा नाम मालूम न हो....।"

"विश्वास रखें, कोई नहीं जानेगा।"

"अब, मुझे क्या करना होगा?" तिवारी ने पूछा।

"यही तो मैं भी सोच रहा हूं। अच्छा, आज़ाद आजकल कहां ठहरे हैं?"

"वह गंगा पार झूसी में रह रहे हैं।"

"क्या वहां पुलिस का घेरा डाला जा सकता है?"

"नहीं! पुलिस का घेरा वहां सफ़ल नहीं हो सकता।"

"क्यों?"

"आज़ाद वह सिंह नहीं, जो खुले जंगल में बिना डर के मारा जा सके, उसके लिए पहले हमें जाल बुनना होगा।"

"वह आपसे कहां मिला करते हैं?"

"मैं जमनापार नैनी की ओर जाता हूं, वे संगम से आगे गंगा पार करके वहां आ जाते हैं।"

"क्या आप लोग कभी शहर में नहीं मिला करते?"

"कभी-कभी, वे मेरे ही साथ शहर आ जाते हैं।"

"फिर क्या करें....।"

"सब ठीक-ठाक हो जाएगा....।"

दोनों के बीच बड़ी देर तक चुपके-चुपके बातचीत चलती रही। वे आने वाले दिन की योजना बना रहे थे।

"ठीक है, तो कल सुबह निश्चित है....।" इन्स्पेक्टर ने कहा।

"हां, ठीक सुबह दस बजे, वहीं, उसी पार्क में....।"

"देखिए, झूठा वायदा सरकार के प्रति धोखा समझा जाएगा। वायदा पक्का होना चाहिए। वरना हम और आप कहीं के नहीं रहेंगे।"

"इस बारे में बेफिक्र रहिए, जब सब बात तय हो गई हैं तो वायदा भी पक्का रहा।"

इन्स्पेक्टर तिवारी से हाथ मिलाकर चला गया।

अन्तरात्मा की पुकार

तिवारी रातभर सोच-सोचकर, करवटें बदल रहा था। उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कार रही थी। वह रातभर चैन की नींद न सो सका, वह सोच रहा था, "क्या चन्द्रशेखर जैसे सुन्दर, वीर पुरुष और देश के सच्चे सपूत के साथ विश्वासघात करना ठीक रहेगा? नहीं....यह मैं नहीं कर सकता।

आज़ाद एक देवतास्वरूप व्यक्ति हैं, जिनका संसार में अपना कुछ

नहीं। वह सब कुछ-देश के लिए कर रहा है। जिसने जवानी की उन्मत्त तरंगों को ब्रह्मचर्य की कठोर साधना में दबाकर अपना जीवन ही मातृभूमि की सेवा में अर्पित कर दिया है, जिसका प्रत्येक क्षण देश-हित के चिन्तन में बीतता है।

संसार का सबसे बड़ा पाप है, विश्वासघात। नहीं! ऐसे व्यक्ति के साथ इतना बड़ा पाप मुझसे नहीं हो सकेगा।"

फिर अचानक तिवारी के दिमाग में इन्स्पेक्टर के कहे शब्द गूंजने लगे, "तिवारी जी! संसार में कोई किसी का नहीं होता। सबसे बड़ा मित्र तो पैसा है, पैसा जिसके पास होता है, उसके सब मित्र होते हैं, बुरे समय में जब बड़े-से-बड़े घनिष्ठ मित्र और सगे-सम्बन्धी साथ छोड़ देते हैं तो पैसा ही सब-कुछ होता है। बिना पैसे के जीवन व्यर्थ है, फिर पैसा कमाने का अवसर भी क्या रोज़-रोज़ आता है? समय चूक जाने पर आदमी जीवनभर पछताता है, पाप और पुण्य, सब व्यर्थ की बातें हैं। भला अपना और अपने बाल-बच्चों का जीवन सुधारने में पाप कैसा?"

अब तिवारी की आंखों के सामने नोटों की गड्डी घूम रही थी। इसके बाद भविष्य में मिलने वाली पांच हज़ार के नोटों की दूसरी गड्डी। सरकार की वफादारी का तमगा और बच्चों को मिलने वाली सरकारी ऊंची नौकरियां....एक-के-एक एक तिवारी हर बात सोचने लगा।

लालच उसे अपने चंगुल में ले चुका था, परन्तु अन्तरात्मा उसे कोस रही थी। अन्तरात्मा ने फिर पुकारा, 'तिवारी! तू संसार में मुंह दिखाने योग्य नहीं रहेगा, तुझे सब देशद्रोही, विश्वासघाती, दुष्टात्मा कहकर पुकारेंगे....।

केवल इतना ही नहीं, तेरे उत्तराधिकारी भी देशद्रोही की सन्तानें कहकर पुकारी जाएंगी। तेरे पाप का फल तेरी पीढ़ियों तक को भोगना पड़ेगा।'

फिर उसके सामने पुलिस इन्स्पेक्टर का चेहरा घूमने लगा, 'देखना वादा पक्का हो। झूठा वादा सरकार के प्रति धोखा समझा जाएगा और हम और आप कहीं के नहीं रहेंगे।'

लालच धीरे-धीरे उसकी अन्तरात्मा पर पर्दा डालता चला गया। अब उसके विचार कुण्ठाग्रस्त होने लगे थे। वह झुठे तर्कों से मन को समझाने का प्रयास कर रहा था, जल्दी ही वह इन्स्पेक्टर से किए गए वायदे के पक्ष में होकर सोचने लगा, 'मेरे वायदे पर विश्वास करके कल से पुलिस अपनी योजना बनाने में लगी है, अब जब मैं इन्स्पेक्टर से पांच हज़ार रुपये भी ले चुका हूं, सरकार को धोखा नहीं दे सकता। अगर मैंने धोखा किया तो सरकार मेरे ही पीछे पड़ जाएगी, फिर चन्द्रशेखर आज़ाद की जगह मुझे जेल में बन्द कर दिया जाएगा।'

तिवारी के सामने अचानक ही पुलिस, जेल और तरह-तरह की यातनाओं के चित्र घूमने लगे। वह भय से कांप उठा, 'तब तो मैं सचमुच ही कहीं का न रहूंगा। पुलिस से पांच हज़ार रुपये लेने की बात भी तब सबके सामने आ जाएगी और आज़ाद, पुलिस और जनता की दृष्टि में गिर जाऊंगा। इससे अच्छा तो यह है कि मैं पुलिस की बात मान लूं। कम-से-कम मुझे आर्थिक लाभ तो हो ही जाएगा।'

कुछ देर संकल्प-विकल्प के बीच पड़े रहने के पश्चात्, अन्त में लालच की विजय हुई। उस देशद्रोही ने अपनी अन्तरात्मा से उठ रही आवाज़ को अनसुना कर दिया। अब वह अपने कुत्सित कृत्य की योजना बनाने मुं जुट गया।

'उधर सेठ पर क्रान्तिकारी दल का आठ हज़ार रुपया जमा है। परसों आज़ाद सेठ से रुपया मांगने आया था, उनके सांथ मैं भी सेठ के यहां गया था। शायद, सेठ की नियत बदल गई है, मुझे लगता है अब वह रुपया लौटाना नहीं चाहता। वह जानता है कि अब क्रान्तिकारी-दल समाप्त हो चुका है, अब केवल आज़ाद ही तो है। तभी वह टालमटोल कर रहा है, फिर भी आज़ाद से वह डरता है, इसलिए साफ मना नहीं कर सका, फिर भी कल दोहपर तक उसने रुपया लौटा देने की बात की है। क्यों न मैं इस मौके का फायदा उठाऊं। सेठ से उन रुपयों को ऐंठने में क्या हर्ज है?

'चन्द्रशेखर आज़ाद की मित्रता से भला मुझे क्या मिलेगा, राजद्रोह

और पुलिस से शत्रुता के कारण जीना भी दूभर हो जाएगा, फिर वह पुलिस इन्स्पेक्टर भी ठीक ही कहता था। संसार में रुपया ही सब कुछ है, रुपये वाले के पाप-दोष सब क्षमा कर दिए जाते हैं। रुपये-पैसे वाला व्यक्ति पापी होते हुए भी समाज में एक सम्मानित व्यक्ति समझा जाता है।

मुझे इस अवसर को भी जाने नहीं देना चाहिए। फिर परेशानी वाली बात भी क्या है? कुछ ही घण्टों के लिए ही तो कल जी कड़ा करना है? उसके बाद तो मौज-ही-मौज है। आज़ाद गिरफ्तार हुआ तो फांसी पर अवश्य लटका दिया जाएगा या फिर वहीं पुलिस की गोली से भून डाला जाएगा। वह चाहे कितना भी अच्छा निशानेबाज़ क्यों न हो, हज़ारों पुलिस वालों से कैसे बच सकता है? इस तरह से मुझे किसी बात का भय नहीं होना चाहिए।

माना आज़ाद की गिरफ्तारी के बाद लोग मुझे कोसेंगे और भला-बुरा कहेंगे, लेकिन कब तक? धीरे-धीरे सब ठण्डा हो जाएगा। समय बीतने पर लोग यह सब अपने आप ही भूल जाएंगे। बाद में कौन किसे बुरा कहता है? बुराई-भलाई की सब बातें थोड़े दिन ही चलती हैं? फिर बात आई-गई हो जाती हैं।'

इतिहास में जयचन्द्र जैसे देशद्रोहियों की कमी नहीं। मुगलकाल से अब तक सैकड़ों जयचन्द होते रहे, जिनके कारण देश ग़ुलाम ही बना रहा। उन्हीं दुष्ट जयचन्दों में से एक जयचन्द वह तिवारी था। अभी सुबह के पांच ही बजे थे कि वह सेठ के घर की ओर चल दिया।

बाहर से तिवारी के पुकारने पर सेठ की नींद खुली। जब उसने बाहर आकर तिवारी को देखा तो उसके होश उड़ गए। यह मालूम होने पर कि तिवारी अकेला आया है, सेठ को कुछ सन्तोष हुआ। सेठ की हालत देखते ही तिवारी बहुत कुछ भांप गया। वह समझ गया कि दाल में ज़रूर कुछ काला है।

उसने सेठ से एकान्त में चलकर कुछ आवश्यक बातें करने के लिए कहा। वहां से चलकर दोनों एक कमरे में बैठ गए, फिर तिवारी

बोला, "आज़ाद को आपकी सारी बातों का पता चल चुका है।"

सेठ के पैरों-तले से मानो ज़मीन खिसक गई।

"क.....क.....कौन-सी बातें?" सेठ ने हकलाते हुए पूछा।

"यही कि आपने उनके बारे में पुलिस को सूचना दी है।"

"म....म....म....मैंने कोई सूचना नहीं दी।" सेठ बुरी तरह घबरा गया। उसके मन में छिपा चोर कांप गया था।

"नहीं! आप झूठ बोलते हैं। आपने पुलिस को गुप्त सूचना दी है और आज़ाद को इसका पता चल चुका है।"

तिवारी अटकलपच्ची में कह रहा था। परन्तु वास्तव में बात ठीक ही थी। सेठ मक्कारी कर रहा था। उसने पुलिस को कह दिया था कि आज़ाद आज दोहपर को दल के किसी काम से वहां पहुंच रहा है। फिर तिवारी की बात सुनकर डर गया था। उसके सामने हाथ में पिस्तौल लिए हुए आज़ाद का चित्र घूम रहा था। तिवारी ने समझ लिया उसका हवा में छोड़ा गया तीर निशाने पर जा बैठा है। अब काम होने में कोई देर नहीं है।

तिवारी ने स्वर को थोड़ा नम्र बनाते हुए, "सेठजी! आप आज़ाद का स्वभाव तो जानते ही हैं। वह धोखा देने वाले को कभी क्षमा नहीं कर सकते। मैंने उन्हें मना लिया है, मैं बड़ी मुश्किल से उन्हें एक बात पर राज़ी कर पाया।"

"कैसी बात?"

"शायद आपको मालूम होगा कि आज़ाद फिर से दल संगठित करना चाहते हैं, लेकिन विडम्बना यह है कि उनके पास खाने-रहने के लिए भी पैसे नहीं हैं।"

"हां, आप सही कह रहे हैं।"

"इस समय आप हमारी सहायता कर सकते हैं। आपके पास दल के आठ हज़ार रुपये जमा हैं। इस समय आप हमें केवल चार हज़ार ही दे दीजिए, मैं आज़ाद को 11 बजे की गाड़ी से अभी भेज दूंगा। इस तरह से आपकी परेशानी भी हल हो जाएगी।"

"लेकिन, इस समय तो मेरे पास रुपये नहीं हैं।"

"मैं कुछ नहीं जानता। आज़ाद को मैंने बड़ी मुश्किल से राज़ी किया है। नहीं तो वह आपको पुलिस को सूचना देने का मज़ा चखाने यहां पर आ रहे थे। ऐसी स्थिति में यदि आपने उनका पैसा नहीं लौटाया तो आपको उसकी बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।"

तिवारी से आज़ाद के आने की बात सुनकर सेठ घबरा गया। वह सोच रहा था कि तिवारी को दे-दिलाकर यहां से टाल देने में ही भलाई है। घबराहट में भी सेठ अपनी चालाकी से बाज़ नहीं आया। काफी तर्क-वितर्क के बाद सेठ ढाई हज़ार रुपये देने को तैयार हुआ। केवल ढाई हज़ार रुपये देने के बावजूद उसने रसीद पूरे आठ हज़ार की लिखा ली।

वह मन-ही-मन सोच रहा था, "अगर आज़ाद कभी रुपया मांगने आए तो वह कह देगा कि मैं तिवारी को पूरा रुपया लौटा चुका हूं।"

ढाई हज़ार में बला टल जाने से सेठ खुश था। सेठ समझ रहा था कि उसने तिवारी को ठग लिया है। दूसरी ओर तिवारी को खुशी थी, जो भी हाथ लगा, वही ठीक है। वह सोच रहा था कि उसने सेठ को खूब मूर्ख बनाया है।

षड्यन्त्र चक्र

पूर्व दिशा में उषाकाल की सतरंगी किरणों से लालिमा छा गई थी। कोटरों में बैठे पक्षी चीं-चीं का राग अलाप रहे थे। धीरे-धीरे अरुणोदय हुआ, प्रभात की सुनहरी किरणें गंगा-यमुना के संगम पर बिखर गईं। सूर्योदय होते ही प्रकृति का कण-कण चमक उठा। हमेशा की तरह आज भी चन्द्रशेखर स्नान और पूजा-पाठ से निवृत्त होकर यमुना के किनारे टहल रहे थे। जाड़ों के उस दिन में सुबह की तीखी और बदन में चुभने वाली ठण्डी हवा चल रही थी, फिर भी वह बाल ब्रह्मचारी नंगे बदन था। मानो ब्रह्मचर्य के तेज से उसकी गठीली मांसपेशियों पर सर्दी, गर्मी और बरसात, किसी ऋतु का भी प्रभाव न होता हो।

टहलते-टहलते आज़ाद के मन में कई तरह के विचार उमड़ रहे थे। उनका मन कुछ अशान्त-सा था। प्रत्येक वस्तु उन्हें उदास और पराई-सी लग रही थी। वह सोचने लगे, 'रामप्रसाद 'बिस्मिल', भगतसिंह, राजगुरु आदि साथियों के पकड़े जाने के बाद अब कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। अब मैं अकेला रह गया हूं, मन कहीं नहीं लग रहा है, किन्तु विवेक कहता है कि अब मातृभूमि की सेवा का भार तेरे ही ऊपर है।

'मुझे दल को एक नए सिरे से संगठित करना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि अब मुझे भगतसिंह जैसे वीर साथी कभी नहीं मिल सकेंगे, फिर भी भारत में वीरों की कमी नहीं है। केवल उनकी सुप्त भावनाओं को जाग्रत कर मार्ग प्रदर्शन करने की आवश्यकता है, परन्तु दल को नए सिरे से संगठित करने के लिए मुझे पर्याप्त धन की आवश्यकता होगी। मुझे अपने-आप पर भरोसा है कि मैं अकेला होते हुए भी इस काम को पूरा कर जाऊंगा।

'पिछले अनुभवों के आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि अभी हमारे देश में सशस्त्र क्रान्ति का उचित समय नहीं आया है। विद्रोह और जन-क्रान्ति होनी चाहिए। बिना सैनिक विद्रोह के जनता के मुट्ठीभर लोगों को सशस्त्र-क्रान्ति में सफलता हासिल नहीं हो सकती। फिर भी सबसे पहले जन-जन में जागृति पैदा करना आवश्यक है।

'निःसन्देह समय और परिस्थिति के अनुसार गांधीजी का मार्ग ही सरल और उचित है, लेकिन यह मेरे किसी काम का नहीं। मैं उसे अपनाना भी चाहूं तो अपना नहीं सकता। जब तक सरकार और क्रान्तिकारियों के बीच ऐसा कोई समझौता नहीं हो जाता कि सरकार हमारे पिछले कार्यों के लिए हमें कोई दण्ड नहीं देगी, तब तक हम अपने मार्ग को नहीं छोड़ सकते।

'कांग्रेस और उनके नेता, हम क्रान्तिकारियों के लिए कुछ करना नहीं चाहते। हमें विवश होकर इस मार्ग पर चलना पड़ा रहा है।

'इस बार नए दल का संगठन करके हम एक नई नीति अपनाएंगे, हम सरकार से सीधे टक्कर नहीं लेंगे। अपने दल के अधिक-से-अधिक

व्यक्तियों को हम सेना में भर्ती कराएंगे। हमारे साथी सैनिक के रूप में रहते हुए अन्य सैनिकों को भी विद्रोह के लिए तैयार करेंगे, फिर कभी उचित समय देखते हुए एक दिन में ही हम सरकार का तख्ता पलट देंगे।

'इस समय यह कार्य दक्षिण भारत से शुरू करना उचित रहेगा। धीरे-धीरे हमारा दल देश के प्रत्येक छोर तक फैल जाएगा।'

'मुझे यहां से चल देना चाहिए। सेठ भी सब नहीं तो कुछ रुपया लौटा ही देगा, फिर मैं आज रात की गाड़ी से बम्बई चला जाऊंगा।'

अचानक आज़ाद का चिन्तन-क्रम टूट गया। अपनी कलाई की घड़ी पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने सोचा, 'ओह! आठ बजकर दस मिनट हो गए हैं, अब तो तिवारी भी आने वाला होगा, परसों उसने यहीं मिलने का वचन दिया था।

'तिवारी मेरे किसी मतलब का आदमी नहीं है, फिर भी अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए उसे साथ ले लिया है। कुछ नहीं तो दो-चार बात करके ही कुछ देर मन बहल जाता है। आज सेठ से रुपये मिल जाएं तो उसका भी साथ छूट जाएगा। अब तो नए-नए और सच्चे देश-सेवक ही साथी बनाए जाएंगे। अगर मेरे साथ दो-चार साथी भी और होते तो भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव फांसी पर लटकने के लिए जेल में बन्द न रहते, किन्तु अपनी विवशता के सामने कलेजा मसोसकर रहा जाता हूं।'

इसी समय जमुना में एक नाव सरस्वती घाट से इसी ओर आती हुई दिखाई पड़ी। नाव में मल्लाह के अतिरिक्त एक आदमी और बैठा था। जैसे-जैसे नाव समीप आती गई आज़ाद ने तिवारी को पहचान लिया। आज़ाद भी नाव की ओर बढ़ चले। नाव से उतरता हुआ तिवारी हाथ जोड़कर बोला, "पण्डितजी प्रणाम। माफ करें, आने में थोड़ी देर हो गई, लेकिन मैंने आपके जाने की सारी व्यवस्था कर ली है।"

"वह क्या?"

"मैं अभी सेठ के पास से होकर आया हूं। उसकी नीयत ख़राब हो गई थी।"

"तुमने यह कैसे जाना?"

"संयोग से कल शाम वह मुझे चौक में मिल गया था। मैंने जब उसे उसके वायदे की याद दिलाई तो वह बहकी-बहकी बातें करने लगा। कभी कहता, अभी मेरे पास पैसे नहीं हैं तो कभी पूछता, आज़ाद इतने पैसों का क्या करेंगे।"

"फिर क्या हुआ?"

"मैंने डराया-धमकाया तो वह चार हज़ार रुपया देने को तैयार हो गया है। जैसे भी हो, आपको अब इसी से अपना काम चलाना होगा। बाद में धीरे-धीरे बाकी रुपया भी वसूल कर लिया जाएगा।"

"मुझे अब ले-देकर केवल तुम्हारा ही भरोसा रह गया है। संसार के सभी काम मित्रों के सहयोग से ही होते हैं। तुम्हारे सिवा मेरा अब कोई भी तो नहीं है।"

तिवारी की अन्तरात्मा उसे एक बार फिर धिक्कारने लगी, 'अरे दुष्ट! इस भोले वीर तपस्वी के प्रति ही तू विश्वासघात करना चाहता है? तू कहता है कि सब कुछ ठीक कर आया है। क्या तू सचमुच सब ठीक कर आया है? जंगल के आज़ाद सिंह को फंसाने के लिए जाल बिछाकर भी तुझे उसी सिंह से यह कहते लज्जा नहीं आती कि तू ठीक कर आया है।

'अरे नीच! अब भी समय है, सम्भल जा। कायर शिकारी सिंह को मारने का झूठा श्रेय लेने के लिए घात लगाए बैठा है। अरे दुष्ट! इसे जाल में न फंसा।'

तभी लालच अन्तरात्मा की आवाज़ को दबाता हुआ बोला, 'अरे मूर्ख! तू फिर बहकने लगा। उधर वे लोग तेरी प्रतीक्षा में बैठे हैं। कुछ घंटों की तो बात है, तब तक तू इस हृदय को कठोर बनाए रख, फिर सब ठीक हो जाएगा।'

अब तिवारी नम्र स्वर में बोला, "मैं तो आपका दास हूं। यह मेरा

सौभाग्य था कि मैं आपके किसी काम आ सका, मेरे लिए इससे बढ़कर खुशी की बात और क्या हो सकती है! मैं तो आपकी सेवा में ही मातृभूमि की सेवा समझता हूं।"

"तिवारी, यह तो तुम्हारी उदारता है। आज जब मैं बिल्कुल अकेला पड़ गया हूं, तुम मेरा सांथ दे रहे हो। आज चन्द्रशेखर वह चन्द्रशेखर नहीं रहा जो कुछ दिनों में ही ब्रिटिश सरकार का तख्ता उलट देने का इरादा रखता था। आज तो वह बिना सेना का सेनापति है।"

"आप निराश न होइए। यदि सेनापति योग्य हो तो सेना को इकट्ठा होते देर नहीं लगती। ऐसे सेनापति के पास सैनिक स्वयं आते हैं। उसकी सेवा में रहते हुए वे अपना और देश का गौरव महसूस करते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि आने वाले समय में एक बार फिर से आज़ाद की तूती बोलेगी और ब्रिटिश सरकार का तख्ता उलट जाएगा।"

तिवारी की बातों से आज़ाद का साहस तो बढ़ा, किन्तु साथ ही उसका तिवारी के प्रति मिथ्या विश्वास और भी अधिक दृढ़ हो गया। सच यह है कि कोई कितना भी कहे कि वह चाटुकारी पसन्द नहीं करता, परन्तु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सभी उसके जाल में फंसते देखे गए हैं। संसार में यदि चाटुकारी न होती तो लोग बड़े-बड़े अनर्थों से बचे रहते।

"अच्छा तो सेठ हमें कहां मिलेगा?"

"सेठ ने मुझसे दरभंगा हाउस के पास वाले अल्फ्रेड पार्क के पास साढ़े दस बजे मिलने को कहा है, वह वहीं रुपया लेकर आएगा। फिलहाल अब हम यहां से चलते हैं। वहां अल्फ्रेड पार्क में आपको छिपने की जगह भी मिल जाएगी।"

"क्या वह रुपये देने अकेला आएगा?"

"हां! उसने अकेले आने का वचन दिया है। साथ ही कहा है कि रुपया मुझे ही देगा और मुझसे ही आपकी रसीद ले लेगा। ऐसे में यदि उसने कोई चालबाजी दिखाई तो जैसा मौका होगा, वैसा ही देखा जाएगा।"

"ठीक है, चलते हैं।"

दोनों नाव में सवार हुए और सरस्वती घाट की ओर चल दिए। एक के मन में दूसरे के प्रति विश्वास था, वह निर्भीक था। दूसरा जो विश्वासघात करने जा रहा था, भय से आतंकित था। वह डर रहा था कि कहीं आज़ाद उसके भावों को न ताड़ रहा हो। यदि इसे कुछ भी सन्देह हो गया तो उसके गिरफ्तार होने से पहले मुझे ही दुनिया छोड़नी पड़ सकती है।

महान् बलिदान

27 जनवरी, सन् 1931 के दिन सुबह लगभग साढ़ नौ बजे के समय आज़ाद और तिवारी केनिंग रोड से होते हुए पार्क रोड और केनिंग रोड के तिराहे के पास से अल्फ्रेड पार्क में घुसे। वहां वे म्योर सैन्ट्रल कॉलेज के सामने कौरनिल रोड से कुछ हटकर, इण्डियन प्रेस से लगभग सौ गज़ की दूरी पर, एक पेड़ के नीचे बैठकर बातें करने लगे।

"न जाने क्यों, आज मेरा मन कुछ अशान्त-सा हो रहा है? सब-कुछ सूना-सूना-सा लग रहा है। फिर भी यहां के चप्पे-चप्पे के प्रति मेरे हृदय में कुछ मोह-सा जाग रहा है।" आज़ाद ने गम्भीर स्वर में कहा।

"भाई आज आप यहां से दूर जा रहे हो न, इसीलिए आपको ऐसा लग रहा है।"

"मैं अपने देश के दूसरे कोने में ही तो जा रहा हूं, कहीं विदेश तो नहीं जा रहा।"

"आपकी बात तो ठीक है। दक्षिण इसी भारत का तो अंग है। फिर भी यहां की भूमि से आपका विशेष सम्पर्क रहा है।"

"मैं इससे पहले भी कई बार बाहर जाता रहा हूं। ऐसा आभास मुझे उस समय तो नहीं हुआ?"

"समय-समय की बात है। कभी होता है, कभी नहीं होता। अब आपके वह साथी भी न रहे, ऐसी स्थिति में मन में इस तरह के विचार

आना स्वाभाविक ही है।''

आज़ाद को तिवारी की बात ठीक जंची। वह मन-ही-मन सोचने लगे, 'वास्तव में तिवारी मेरा बड़ा शुभचिन्तक है। वह मेरी मनोदशा का अनुमान ठीक-ठीक लगा रहा है।'

कुछ समय बाद आज़ाद ने अपनी घड़ी में समय देखा। फिर कहा, ''अब दस बजने में केवल दस मिनट ही रह गए हैं। सेठ आने ही वाला होगा।''

''हां, अब मुझे दरभंगा हाउस की ओर जाना चाहिए। वह साढ़े दस बजे तक वहां अवश्य ही पहुंच जाएगा।''

अचानक आज़ाद ने कौरनिल रोड की तरफ दृष्टि दौड़ाई। उन्होंने देखा, वहां अनगिनत पुलिसकर्मी खड़े थे।

वास्तव में पिछले दिन से ही सी॰ आई॰ डी॰ का एक इन्स्पेक्टर तिवारी के पीछे लगा हुआ था। जिस समय तिवारी आज़ाद को लेकर अल्फ्रेड पार्क में घुसा, उसने कोतवाली को सूचना दे दी। वहां सारे नगर की पुलिस पहले से ही जमा थी। कुछ ही मिनटों में उसने पार्क को घेर लिया। घेरा छोटा करते-करते पुलिस आज़ाद के चारों ओर पहुंच गई।

पुलिस को देखकर आज़ाद ने कहा, ''पुलिस! यहां पुलिस कैसे आई?''

''पता नहीं, पुलिस को कैसे पता चला! चलो यहां से निकल भागें।'' तिवारी ने कुछ आश्चर्य दिखाते हुए कहा।

भागने का अब कोई रास्ता नहीं था। आज़ाद ने जिधर देखा उधर पुलिस-ही-पुलिस थी। पुलिस ने सीधे ही गोलियों की बौछार शुरू कर दी। वह हाथ आए अवसर को कैसे छोड़ सकती थी? पुलिस को डर था कि सिंह को जाल में ठीक से नहीं फंसाया गया तो वह दस-बीस का खून कर देगा। पुलिस की छोटी-सी चूक में आज़ाद की निशानेबाज़ी अपना करिश्मा दिखा सकती थी। फिर पुलिस को अब कोई चिन्ता नहीं थी, उनका मुखबिर तिवारी भी मरे तो मर जाए, अब वह उनके किसी काम का न था।

तिवारी जल्दी ही समझ गया कि पुलिस को उसके ज़िन्दा रहने या मर जाने की कोई चिन्ता नहीं है, उसे अपने कुकृत्य पर मन-ही-मन पछतावा हो रहा था, लेकिन अब पछताने से क्या लाभ? उसे तो अब भी पुलिस की गोली से अधिक आज़ाद की गोली का डर था। वह सोच रहा था, कहीं आज़ाद को इस समय तनिक भी सन्देह हो गया तो उसकी जान विधाता भी नहीं बचा सकता।

अपनी जान बचाने के लिए अब वह नाटक करने लगा, "भाई, मुझे तो यह सब सेठ की चाल लगती है। चलो किसी तरह यहां से भागने का प्रयास करें।"

वीर हमेशा निर्मल हृदय वाले होते हैं। वह दूसरों को भी अपने जैसा ही समझते हैं। प्रकृति का यही नियम यहां भी लागू हुआ। आज़ाद को अभी भी उस दृष्ट पर सन्देह नहीं हुआ। वह उससे बोले, "तिवारी, तुम भाग जाओ, फिर मैं उनसे अकेले ही निबट लूंगा।"

तिवारी तो डर रहा था कि कहीं आज़ाद को सन्देह न हो जाए। उसने अन्तिम बार अपनी सुरक्षा के लिए एक शतरंजी चाल चली और बोला, "नहीं! मैं आपको ऐसी स्थिति में अकेले छोड़कर नहीं जा सकता।"

आज़ाद ने कहा, "तुम क्यों समय नष्ट कर रहे हो, जल्दी-से-जल्दी यहां से निकल जाओ। जब तक तुम यहां से सुरक्षित बाहर नहीं निकल जाते, मुझे चैन नहीं मिलेगा।"

अब आज़ाद ने तिवारी को अपनी आग उगलती पिस्तौल की आड़ में कर लिया और दूसरे हाथ से धक्का देकर भगा दिया। तिवारी विवश होकर वहां से जाने का अभिनय करता हुआ नौ-दो ग्यारह हो गया। अब पुलिस और आज़ाद के बीच भीषण गोलियां चलने लगी।

पुलिस सुपरिंटेंडेंट नाटबाथर ने आगे बढ़ते हुए कहा, "हैंड्स अप!"

जबाव में आज़ाद की गोली उसके हाथ पर आकर लगी। अपने अफसर को घायल होता देख पुलिस धड़ाधड़ गोलियां बरसाने लगी।



आज़ाद एक पेड़ की आड़ में आ गए और गोलियों का ज़बाव गोलियों से देने लगे।

वह अकेला वीर कई हज़ार पुलिस वालों का सामना भला कब तक कर पाता। आज़ाद की गोलियों से पुलिस इन्स्पेक्टर ठाकुर विश्वनाथसिंह और कई सिपाही बुरी तरह घायल हो चुके थे। लगभग बीस मिनट तक दोनों ओर से बराबर गोलियां चलती रही। आखिर आज़ाद कब तक पुलिस की गोलियों का जबाब दे पाते। जल्दी ही आज़ाद की गोलियां समाप्त होने पर आ गईं। आज़ाद समझ गए कि अब बच निकलना मुश्किल है। उन्होंने अपने पिस्तौल को अपनी कनपटी पर रखकर गोली चला दी।

इस प्रकार आज़ाद, सदैव स्वतन्त्र ही रहा और मरते समय भी उसने अपनी आज़ादी का ही परिचय दिया। आज़ादी की प्रतिमूर्ति, वह क्रान्तिवीर अपनी ही गोली से वीरगति को प्राप्त हुआ।

कायर पुलिस वाले आज़ाद से इतने आतंकित थे कि वे उनके शव के पास जाने का साहस न कर सके। वे शव पर गोलियों की लगातार बौछार करते रहे। काफी गोलियां चला देने के बाद ही उन्हें विश्वास हुआ कि पेड़ के पास आज़ाद नहीं, केवल आज़ाद का शव पड़ा है। फिर भी वे कुछ देर तक खड़े देखते रहे, फिर वहां जाकर बड़ी निर्लज्जता से शव को घसीटते हुए पुलिस की मोटर तक ले गए और उठाकर मोटर में डाल दिया।

इस प्रकार सशस्त्र क्रान्ति का वह दीप 27 जनवरी, सन् 1931 को, दिन के दस बजकर बीस मिनट पर अपनी अन्तिम तेजमयी आभा दिखाकर बुझ गया।

श्रद्धांजलि

आज़ाद के शहीद हो जाने पर भी सरकार पर उनका आतंक छाया हुआ था। जनता ने अपने प्रिय नेता का शव लेने के लिए सरकार से बहुत अनुरोध किया। सरकार ने इस अनुरोध को टाल दिया, क्योंकि उसे

विश्वास था कि शव को देखकर जनता की भावनाएं भड़क उठेंगी और उसके लिए एक विकट परिस्थिति खड़ी हो सकती है।

शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया, फिर जांच के कुछ ही घण्टों बाद शव को चुपचाप एकान्त में जला दिया गया। कुछ समय बाद गर्व से नगर में सरकारी घोषणा की गई—

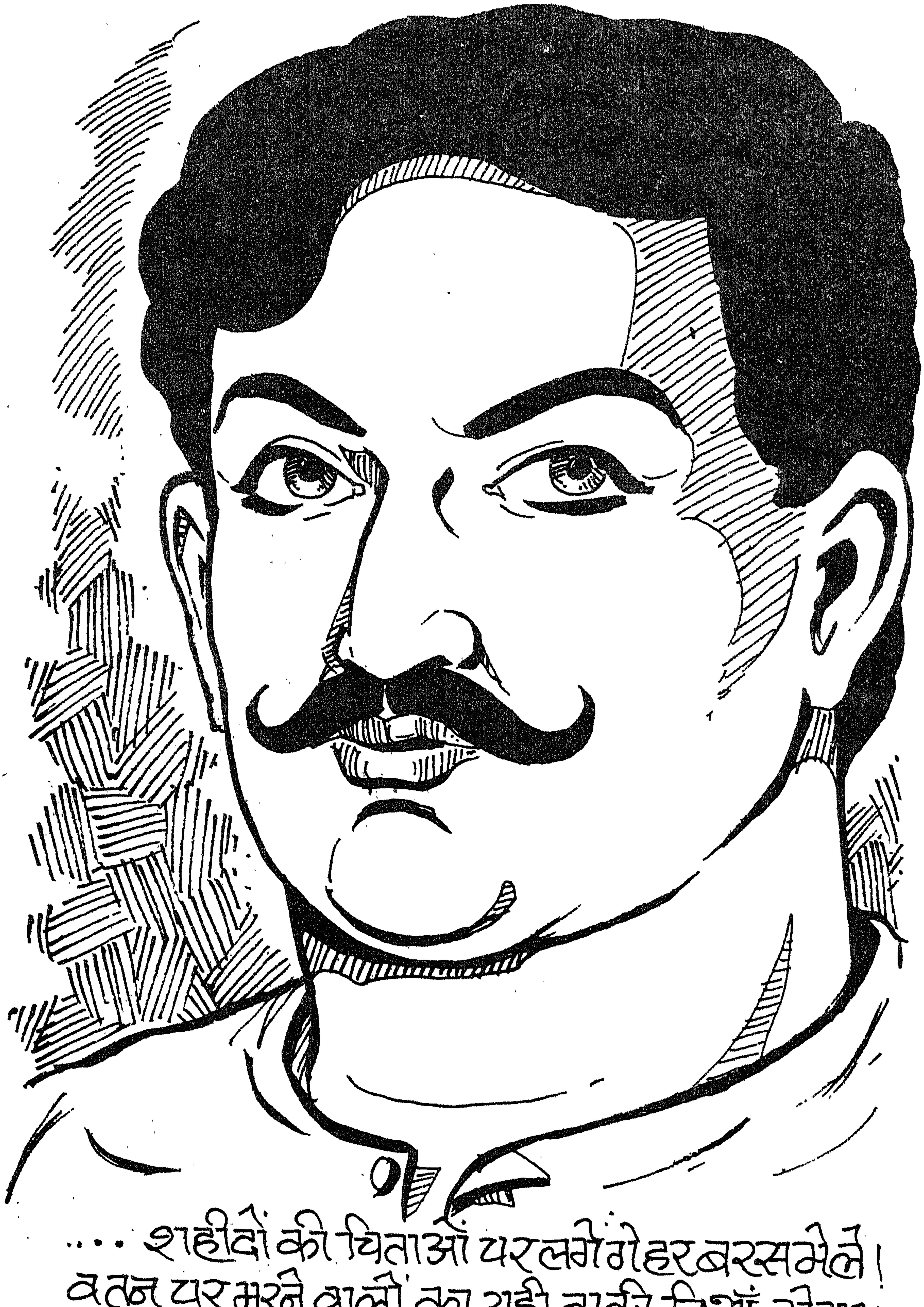
> 'चन्द्रशेखर आज़ाद पुलिस की गोलियों से मारे गए! उनका दाह-संस्कार पुलिस द्वारा ही किया गया है तथा शव-भस्म को त्रिवेणी नदी के पवित्र जल में प्रवाहित कर दिया गया है।'

समाचार नगर में आग की तरह फैला। हर व्यक्ति के चेहरे पर दुःख के भाव थे। नगर में करुणा का सागर उमड़ पड़ा। लाखों नर-नारी और बच्चों की भीड़ अल्फ्रेड गार्डन के उस रक्त-रंजित स्थान पर जमा हो गई, जहां महान क्रान्तिवीर शहीद हुआ था। सभी की आंखें में आंसू थे और सभी सिसक रहे थे। आंसुओं से वह भूमि तर हो गई थी, लोग उस स्थान की मिट्टी को बड़ी श्रद्धा से अपने मस्तक पर लगा रहे थे।

कुछ ही समय पश्चात् त्रिवेणी के तट पर भी पूज्य नेता के प्रति अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने वालों की भीड़ उमड़ पड़ी। उधर गंगा-यमुना की धारा बहकर संगम पर मिल रही थी, उधर श्रद्धांजलि अर्पित करने वालों की आंखों से भी आंसुओं गंगा-यमुना बहकर संगम के जल में मिल रही थीं। वे अपने आंसुओं की बूंदों से उस वीर का तर्पण कर रहे थे।

वह वृक्ष, जिसकी आड़ में आज़ाद ने वीरगति प्राप्त की थी, जनता के लिए एक पवित्र-स्थल बन चुका था। रोज़ वहां हज़ारों लोगों की भीड़ जमा रहती, जो उस क्रान्ति के देवता का गुणगान करते हुए वृक्ष को त्रिवेणी के जल से स्नान कराते, उसकी पूजा करते, फूल-मालाएं चढ़ाते तथा आरती उतारते।

प्रयाग पहले ही एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। अब देश के कोने-कोने



.... शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा।।

से जो भी व्यक्ति वहां जाता, वह उस वृक्ष के दर्शन के लिए अवश्य जाता और अपने-अपने मतानुसार पूजा करता। ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने पूज्य नेता के प्रति जनता की यह भावनाएं भी नहीं देखी जा सकीं और अन्ततः उस महान बलिदान का चिह्न मिटाने के उद्देश्य से उस वृक्ष को जड़ से नष्ट करवा दिया गया।

सरकार ने अपनी करनी में कोई कसर नहीं छोड़ी, परन्तु वह जनता के हृदय से उस वीर के प्रति श्रद्धा को कभी नहीं मिटा सकी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लगभग दस वर्ष पश्चात् उसी स्थान पर जहां वह वृक्ष था, जनता ने चन्द्रशेखर आज़ाद की मूर्ति स्थापित करा दी है। सिंह की तरह मस्तक ऊंचा किए, एक हाथ में मूंछों को ताव देते हुए, उस पत्थर की मूर्ति की आंखों से आज भी चिंगारियां निकलती प्रतीत होती हैं। यह मूर्ति हमें आज भी महान वीरों द्वारा आज़ादी के लिए किए गए संघर्षों को स्मरण कराती है।

चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत के बाद 23 मार्च, 1931 को शाम 8 बजे सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को लाहौर में फांसी दे दी गई। यद्यपि फांसी का दिन 24 मार्च नियत था। नियम के अनुसार फांसी सुबह के समय ही दी जानी थी, परन्तु जन-आन्दोलन की आशंका से सरकार ने अपने ही नियमों को तोड़ दिया। तीनों क्रान्तिकारियों को एक दिन पहले ही चुपचाप फांसी दे दी।

इन तीनों क्रान्तिकारियों के शव भी उनके परिवारजनों को नहीं सौंपे गए। रात में पुलिस के पहरे में शवों को रावी नदी के तट पर जलाकर बहा दिया गया। इस प्रकार क्रान्तिकारी दल पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गया।

सन् 1957 के लगभग लोगों ने एक बुढ़िया को कहते सुना था, "चन्द्रशेखर अब आता ही होगा, उसके लिए पेड़े रखे हैं, उसे पेड़े बहुत अच्छे लगते हैं।"

वीर चन्द्रशेखर आज़ाद की जननी अपने पुत्र-विरह में पागल हो गई थीं। उस पागलपन में उन्हें होश नहीं था कि चन्द्रशेखर अब अमर

हो चुका है, वह कभी नहीं आएगा।

कहा जाता है कि भारत सरकार ने स्वतन्त्रता के कई वर्ष बाद उस बुढ़िया के लिए पन्द्रह रुपए महीने की पेन्शन बांध दी थी। इस पेन्शन को वे तीन-चार महीने से अधिक न ले सकीं और चल बसीं।

प्रायः यह बात सभी जानते हैं कि वीर कूटनीतिज्ञ नहीं होते। हमारे क्रान्तिकारी भी जितने वीर थे, उतने ही भोले थे। यही कारण है कि उन्होंने कूटनीति का आश्रय बहुत ही कम लिया और छोटी-छोटी बातों में वीरता दिखाकर जीवन समाप्त कर डाला। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी वीरता अद्वितीय थी। ऐसी वीरता का उदाहरण विश्व के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता।

उन क्रान्तिकारी के त्याग, तपस्या और देश-भक्ति पर किसी को कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। आज हम स्वतन्त्र हैं। इस स्वतन्त्रता की नींव उन्हीं वीरों के बलिदानों से पड़ी। क्रान्तिकारियों ने सन् 1857 से लेकर सन् 1931 तक, यानि 75 वर्ष की लम्बी अवधि में जिस वृक्ष को लगाकर खून से सींचा था, भले ही उसे काटकर फेंक दिया गया, फिर भी उसकी जड़ें इतनी गहरी थीं कि वह समय मिलते ही पुनः अंकुरित होने लगा।

क्रान्तिकारियों के बलिदानों से जनता का ब्रिटिशराज के प्रति विद्रोही भावनाएं उमड़ पड़ीं। यह वही विद्रोही भावनाएं थी, जो 1931 में साम, दाम, दण्ड, भेद से दबा दी गई थीं। सन् 1942 की क्रान्ति और 1946 का जल-सैनिक विद्रोह इसका प्रतिफल था।

आज जब स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हम नई सहस्राब्दि में कदम रख चुके थे, स्वतन्त्रता रूपी अन्तरिक्ष पर चन्द्रशेखर आज़ाद सूर्य के समान सदैव प्रकाशमान रहेंगे।

●●●